तरंगतले

(भाग 2)

(मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से संबंधित संस्मरणों का संकलन)

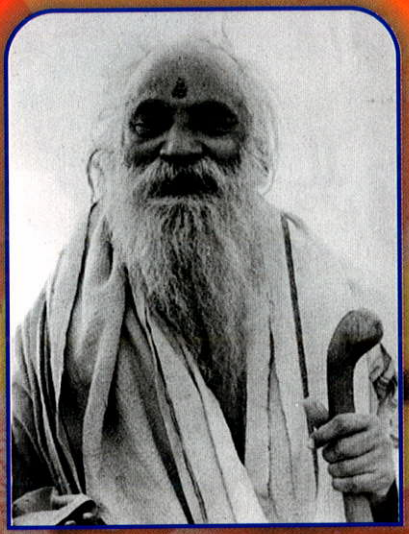

शरणानंदजी कहते थे कि एक नये लोक का निर्माण हो रहा है, क्योंकि अहं का इतना अभाव पहले किसी दार्शनिक का नहीं हुआ

-स्वामी रामसुखदास

प्राकृत भारती पुष्प 230

तरुतले

(भाग 2)

(मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से संबंधित संस्मरणों का संकलन)

संकलन

शांतिस्वरूप गुप्ता

सम्पादक

एम.ए. राकेश

शरणानंदजी कहते थे कि एक नये लोक का निर्माण हो रहा है, क्योंकि अहं का इतना अभाव पहले किसी दार्शनिक का नहीं हुआ

- स्वामी रामसुखदास

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग

प्रकाशक:

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक,
प्राकृत भारती अकादमी
१३-ए, गुरु नानक पथ, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-302017
दूरभाष : 0141- 2524827

प्रथम संस्करण : 2007
द्वितीय संस्करण : 2012

मूल्य : 50/- रुपये

© प्रकाशकाधीन

ISBN NO.978-81-89698-40-9

लेजर टाइप सेटिंग
श्याम अग्रवाल,
प्राकृत भारती अकादमी

मुद्रक:
राज प्रिन्टर्स, जयपुर
फोन नं. 0141-2621774

तरुतले (भाग 2) /शांतिस्वरूप गुप्ता/2012

This book is printed on Eco-friendly paper.

प्रकाशकीय

हर्ष और विस्मय दोनों की अनुभूति एक साथ हो रही है, यह लिखने में कि छः माह के भीतर ही '**तरुतले**' प्रथम भाग के दो संस्करण निकालने पड़े। लग रहा है कि तीसरा संस्करण भी जल्दी ही मुद्रित कराना पड़ेगा। '**तरुतले**' ने प्रबुद्ध समाज में एक हलचल पैदा की है, जो इस बात के संकेत हैं कि स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का दर्शन आने वाली पीढ़ी को भौतिकवाद, अध्यात्मवाद या आस्तिकवाद – तीनों दृष्टियों से सही दिशाओं में पथ प्रदर्शन करने का एक सशक्त व सही माध्यम है।

महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर में प्रकाण्ड विद्वान श्री कन्हैयालाल लोढ़ा के सान्निध्य में सघन वृक्षों की छांह में स्वामीजी के दर्शन व साहित्य के वाचन व उस पर चर्चा करने का क्रम निरंतर, नियमित रूप से, अबाध गति वर्षों से चल रहा है। चर्चा का माध्यम विशेष रूप से मानव सेवा संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य व जीवन दर्शन पत्रिका है। स्वामीजी के निकट संपर्क में रहे विभिन्न सज्जनों द्वारा उनके जीवन से संबंधित घटनाएँ व संस्मरण भी भेजे जाते रहे हैं, जिनका वाचन **तरुतले** किया जाता है। इन सबको एकत्र करने का भार श्री शांतिस्वरूप गुप्ता द्वारा उठा लिया गया है। पर्याप्त मात्रा में सामग्री एकत्र हो जाने पर '**तरुतले**' का द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है।

मानव सेवा संघ के प्रति व जिन-जिन भी सुधीजनों ने अपने संस्मरण भेजे हैं उनके प्रति प्राकृत भारती अकादमी आभार व्यक्त करती है। बीकानेर के वरिष्ठ साधक श्री बंसीधर बिहाणी ने स्वामी रामसुखदासजी महाराज द्वारा स्वामीजी के प्रति व्यक्त किए गए विचार—'एक अद्वितीय संत' भेजे हैं। उनके प्रति भी आभारी हैं।

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक
प्राकृत भारती अकादमी,
जयपुर

भूमिका

राजकीय उच्च विद्यालय, जयपुर के प्रधानाध्यापक श्री श्यामकांत शर्मा लिखते हैं -

''मैंने जब सुना कि '**तरुतले**' का द्वितीय भाग प्रकाशित हो रहा है, तो पूज्य माताजी दिव्य ज्योति श्री देवकीजी की एक बात याद हो आई। उन्होंने बताया था कि स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के शरीर छोड़ने के कुछ दिन पूर्व उन्हें लगा कि मानवता के संरक्षक द्वारा लगाए गए मानव सेवा संघ रूपी पौधे की रक्षा का भार उनके कमजोर कंधों पर आ रहा है, तो वे उनके पास गईं तथा रुंधे हुए कंठ से बोलीं - महाराज! इन कमजोर कंधों पर इतना बड़ा बोझ कैसे उठाया जाएगा?''

यह सुनकर स्वामीजी महाराज ने धीरे-धीरे बोलते हुए फरमाया - 'देवकीजी! चिंता मत करो। यह शरणानंद का कार्य नहीं, प्रभु का कार्य है। तुम देखोगी अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता-साधक आयेंगे। यह काम तो होगा ही। तुम चिंता बिलकुल मत करो।' फिर थोड़ा रुककर बोले - 'तुम लोगों का काम तो इतना ही है कि - **इस मशाल को जलाए रखना** और चुप हो गए।'

श्री श्यामकांतजी के उक्त कथन से हमें लगा कि वास्तव में '**तरुतले**' का प्रकाशन उस मशाल को जलाए रखने का एक लघु व विनम्र प्रयास है।

छ: माह की अवधि में पहले भाग के दो संस्करण निकले तथा तीसरे संस्करण के मुद्रण की तैय्यारी चल रही है। अत: उसका दूसरा भाग निकालने में हमें अत्यंत कृतज्ञता की अनुभूति हो रही है। स्वामीश्री रामसुखदासजी महाराज के कथनानुसार स्वामीश्री शरणानंदजी के दर्शन व साहित्य के माध्यम से एक नए लोक का निर्माण हो रहा है। इस बात की पुष्टि अब और भी पंथ व सम्प्रदाय के लोग करने लगे हैं जो स्वामीजी का साहित्य पढ़ते हैं। यह एक शुभ संकेत है।

'**तरुतले**' के प्रकाशन का सबसे बड़ा लाभ यह हो रहा है कि इसको पढ़ने के पश्चात् सुधीजनों में मानव सेवा संघ का साहित्य पढ़ने की रुचि जागृत हो रही है। हमें लगता है कि गुणोत्तर श्रेणी (Geometrical Progression)में यह साहित्य जनता जनार्दन में फैलेगा जिसकी वर्तमान युग में अत्यंत आवश्यकता प्रतीत होती है।

- शांतिस्वरूप गुप्ता

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	एक अद्वितीय सन्त - स्वामी रामसुखदास	1
2.	आजादी के दीवाने	4
3.	जैसे सारा प्रवचन मेरे ही लिए दिया गया है	5
4.	मन में अत्यन्त अफसोस है कि	7
5.	ऊँचे दर्जे का शिष्य	8
6.	मैं तो पचास प्रतिशत लुट गया	10
7.	सारा परिवार कृतज्ञ	11
8.	कि यह शरीर विश्व रूपी वाटिका की खाद बन जाए	12
9.	अरे भाई! इतनी जल्दी क्या थी?	13
10.	मैंने तेरी छांह लही, तूने मेरी.....	15
11.	शुभ-संकल्प - प्रभु-प्रदत्त	16
12.	यह न पूछो कि वे कौन थे?	17
13.	और पुनः स्वस्थ हो गए	18
14.	यहाँ तक कि प्राणांत भी संभव था	19
15.	उसमें बदबू होती ही नहीं	21
16. (i)	इनमें जरूर अश्रद्धा हो जाएगी,	22
(ii)	चुने हुए प्रतिनिधि ही पधारते हैं	
17.	सारा काफिला विस्मित था	23
18.	वही अकेला रह जाता है	24
19.	यह तो मेरा अपना स्थान है	26
20.	तो संसार भी परमात्मा है	27
21.	अहम् रूपी अणु का विस्फोट	28
22.	आज भी कोई यशोदा मैय्या बन जाए	29
23.	तो, जिताने वाले को मजा आता है	30

24.	द्वारकाधीश भी ..... रह नहीं सके	31
25.	परमात्मा का प्रकाश	33
26.	बिलकुल जमीन की बात	34
27.	केवल आनंदमय स्वतंत्र अस्तित्व	36
28.	राम की मधुर स्मृति	37
29.	सेवा की प्रेरणा का स्रोत	38
30.	तब तुम्हारी छुट्टी होती है	39
31.	देवी! न मालूम कब संध्या हो जाए?	41
32.	तुम्हारे प्यारे ने छात्राओं का वेश बनाया है	43
33.	रस-तत्व	45
34.	तो हमने मनुष्य होकर क्या किया?	47
35.	तुम इस पर दृढ़ रहो कि	48
36.	प्राणों की आहुती कहाँ दी?	51
37.	सोचो!	52
38.	पूज्य स्वामीजी महाराज की अनमोल यादें	53
39.	क्योंकि राम चाहते हैं	56
40.	बस! इतनी बात है	59
41.	इससे बड़ा प्रमाद और क्या होगा!	62
42.	हम सबका भी भर सकता है	63
43.	निगोड़ी जबसे गई है तबसे	65
44.	जीवन आनन्दमय कैसे बने?	67
45.	हमारे दु:ख का कारण	68
46.	उनकी प्रयोगशाला के प्रयोग की एक बानगी	69
47.	जोरदार दो फण्ड	72
48.	रक्षा स्वत: हो जाती है	73
49.	इसी वर्तमान में हो सकती है	74
50.	यही मेरी व्यथा है	77
51.	विनोद में सत्य	79

52. संत – जीवन–परिमल – शादीलाल वर्मा 82
1 तो क्रांति आएगी
2 जीवन मुक्ति
3 विवेकवित् जीवन
4 भौतिक उन्नति
5 सुख भोग का परिणाम
6 रसोईघर में ही सिद्धि
7 विचार के मोती
8 शाश्वत जीवन
9 साधन और जीवन की एकता
10 विशेष लाभ
11 आपकी तो छूट सकती है
12 हरि आश्रय
13 स्वभाव की ओर
14 गुरु साहब का ही दूसरा रूप
15 भूल और प्रमाद
16 तुम्हारी मुक्ति तो पक्की
17 परम धन
18 भगवान् की याद
19 न अभी, न कभी
20 बर्बाद कर देगा
21 कायदे का उल्लंघन
22 हमारी गर्दज हाजिर है
23 फांसी के तख्ते पर भी चैन
24 अर्थ की गुलामी से मुक्ति
25 मर्यादित नसीहत
26 यही होली है
27 पहले भी तुम्हारी नहीं थी
28 पहली ही बार मारने आए हैं
29 एकमात्र उपाय

30 संत दर्शन का लाभ
31 प्यारे की मौज में अपनी मौज
32 इतना बढ़िया खिलौना
33 कितना मजा आएगा?
34 सद्गुरु और शिष्य का संबंध
35 भजन में विलीन
36 शक्ति अवश्य देंगे
37 सिद्ध बनाने के लिए
38 हिन्दू धर्म की मर्यादा
39 मृत्यु को ठहरना पड़ेगा
40 बेचारा रोगी कहाँ जाएगा?
41 बाहर का जगत् भी देख सकते थे
42 प्रभु प्राप्ति में हेतु
43 लक्ष्य प्राप्ति का उपदेश
44 शाश्वत मस्ती
45 उसकी आँखों का क्या उपयोग?
46 अपने प्रति न्याय, दूसरे के प्रति उदारता
47 आँख वालों का धर्म
48 धर्म का काम
49 मानव के पतन का कारण
50 मन बदलने की टैक्नीक
51 दु:ख मिटाने का उपाय

♦♦

एक अद्वितीय सन्त

(1)

– स्वामी रामसुखदास

श्रीशरणानन्दजी महाराज एक क्रान्तिकारी संन्यासी थे। वे सर्वोच्च कोटि के महात्मा थे। उनके समान कोई दार्शनिक नहीं हुआ। उनकी वाणी विलक्षण है। मैंने अनेक सन्तों की वाणी पढ़ी है, पर शरणानन्दजी की वाणी सबसे विलक्षण है! उनके शब्द बड़े चुने हुए हैं और विशेष अर्थ रखते हैं। **उनका विवेचन आदि शंकराचार्यजी से भी तेज है।** उनकी साधना विवेक–प्रधान होने से उनकी वाणी में विवेक की प्रधानता है। मैं भी उसीका अनुसरण करता हूँ।

शरणानन्दजी की बुद्धि विलक्षण थी। वे कहते थे कि भगवान ने मुझे आवश्यकता से अधिक बुद्धि दे रखी है। उनकी बुद्धि भी तेज थी और पकड़ भी तेज थी। उनमें पचाने की शक्ति भी थी, जैसे वैश्यों में धन पचाने की शक्ति होती है। इसलिए इतना ऊँचा बोध होने पर भी वे प्रकट नहीं करते थे। **कारण कि उनकी दृष्टि में सब कुछ वासुदेव ही था।** वे किसी बात को व्यक्तिगत नहीं मानते थे।

शरणानन्दजी की वाणी में युक्तियों की, तर्क की प्रधानता है। उनको कोई काट नहीं सकता। मुझे भी तर्क पसन्द है। परन्तु मैं शास्त्रविधि को साथ रखते हुए तर्क करता हूँ। **उनकी पुस्तकों में यह बात देखने में आती है कि वे बोध कराना चाहते थे, सिखाना नहीं चाहते थे। उनकी बातें गोली की तरह असर करती हैं। वे अपनी बात को परोक्ष रूप से कहते थे, जिससे साधक कोरी बातें सीख न जाय। वे 'अभ्यास' न कराकर 'स्वीकार' कराते थे, 'बौद्धिक व्यायाम' न कराकर 'अनुभव' कराते थे।**

शरणानन्दजी की भाषा कठिन होने में दो कारण प्रतीत होते हैं – पहला, पढ़ाने की कला से अनभिज्ञता और दूसरा, गूढ भाषा में लिखने से पाठक उसमें अधिक विचार करे, जिससे बात उसकी बुद्धि में बैठ जाय। उन्होंने सोच–समझकर ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिससे पढ़ने वाले को बुद्धि लगानी पड़े। सरल भाषा का प्रयोग करने से पढ़ने वाला बातें सीख जाता है, बुद्धि नहीं लगाता। **उनकी बातें बड़ी मार्मिक हैं। वैसी और जगह नहीं मिलतीं।**

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि जितने आचार्य हुए हैं, उन सबसे तथा छहों दर्शनों से शरणानन्दजी का दर्शन तेज है। उनकी बातें सम्पूर्ण शास्त्रों का अन्तिम तात्पर्य है। **अबतक वेदान्त का जितना विवेचन हो चुका है, उससे आगे शरणानन्दजी की वाणी है। शरणानन्दजी कहते थे कि एक नये लोक का निर्माण हो रहा है, क्योंकि अहम् का इतना अभाव पहले किसी दार्शनिक का नहीं हुआ।** उन्होंने क्रिया और पदार्थ के आश्रय का सर्वथा त्याग कर दिया था, जो आजतक किसी सन्त ने नहीं किया। इसलिये वे क्रांतिकारी संन्यासी थे। उनका जो इतना विकास हुआ, वह शरणागति के कारण ही हुआ।

कर्ण के पैर, कुन्ती के पैरों से मिलते थे, इसलिये युधिष्ठिर को कर्ण के पैर स्वाभाविक ही प्रिय लगते थे, पर क्यों लगते हैं - इसका उन्हें पता नहीं था। **ऐसे ही आरम्भ से मुझे शरणानन्दजी की बातें प्रिय लगती थीं। पर इसका कारण पीछे पता चला कि शरणानन्दजी की बात गीता की बात है, और गीता मुझे प्रिय लगती है।** शरणानन्दजी की बातें मेरी प्रकृति के अनुकूल पड़ती हैं। वैसी प्रकृति मेरी शुरू से रही है।

शरणानन्दजी में यह विलक्षणता ईश्वर की शरणागति से ही आयी थी। उन्होंने एक बार कहा था कि 'मेरा स्वभाव है, जिस बात को पकड़ लेता हूँ, उसे फिर छोड़ता नहीं।' उन्होंने शरणागति को पकड़ लिया था। भगवान् के शरणागत होने से उनमें ज्ञान का प्रवाह आ गया। उनकी वाणी में स्वत: गीता का तत्व उतर आया। उनकी बातों से गीता का अर्थ खुलता है। **उन्होंने जड़-चेतन का जैसा विश्लेषण किया है, वैसा किसी सन्त की वाणी में नहीं मिलता।**

शरणानन्दजी के मतानुसार सुखी-दु:खी होना मूर्खता का फल है, प्रारब्धका फल नहीं। उनके मतानुसार विवेक अनादि है और बुद्धि में आता है। शरणानन्दजी के मतानुसार 'कर्म' सकाम या निष्काम नहीं होता, प्रत्युत 'कर्ता' सकाम या निष्काम होता है। **मुझे उनका मत पूरी तरह मान्य है।** कर्मयोग की बात मैंने उनसे ही सीखी है। उनकी पुस्तक '**मानव की मांग**' पढ़कर मेरी उन पर श्रद्धा हुई।

शरणानन्दजी की बातें बड़ी मार्मिक और गहरी हैं। गहरा विचार किये बिना हर एक के जल्दी समझ में नहीं आतीं। **वो जो बातें कहते हैं, वे छहों दर्शनों में नहीं मिलतीं। केवल गीता और भागवत के दशम् स्कन्ध में मिलती हैं।** पर वे भी पहले नहीं दीखतीं। जब शरणानन्दजी की बातें पढ़ लेते

हैं, तब वे गीता और भागवत में भी दीखने लगती हैं। **वे सीधे मूल को पकड़ते हैं, सीधे कलेजा पकड़ते हैं। इतना प्रचण्ड ज्ञान होते हुए भी इस विशेषता को उन्होंने अपनी नहीं माना।** उन्होंने एक बार मुझसे कहा था कि आप मेरे ही भावों का प्रचार करते हैं। उनका कहना सही है। **मेरा मानना है कि शरणानन्दजी के समकक्ष कोई नहीं है। शरणानन्दजी के समान मुझे दूसरा कोई नहीं दिखता। दीखना दुर्लभ है।**

पहले मैं समझता था कि शरणानन्दजी ने कभी पढ़ाया नहीं, इसलिये उनकी बात सबकी समझ में जल्दी नहीं आती। पर अब दीखता है कि उनकी दृष्टि में सब कुछ वासुदेव ही है, फिर वे किसको अज्ञानी, बेसमझ मानें? वे दूसरे को बेसमझ मानेंगे, तभी तो उसे समझायेंगे। उनकी बातों का सार है - **अपनी व्यक्तिगत कोई भी वस्तु नहीं है, और एक सत्ता के सिवाय कुछ भी नहीं है।**

हम कोई बात कहते हैं तो हमें प्रमाण की आवश्यकता रहती है, पर शरणानन्दजी को प्रमाण की आवश्यकता है ही नहीं। **उन्होंने जो लिखा है, उससे आगे कुछ नहीं है - ऐसी मेरी धारणा है।** उनकी बातें सब मनुष्य मान सकते हैं। उनकी युक्तियों का किसी से विरोध नहीं है। उन्होंने कहा है **कि भगवान् क्या हैं—इसे खुद भगवान् भी नहीं जानते, ऐसे ही शरणानन्दजी क्या हैं - इसे खुद शरणानन्दजी भी नहीं जानते।**

शरणानन्दजी हमें मिल गये, उनकी पुस्तकें पढ़ने को मिल गयीं - यह भगवान् की हम पर बड़ी कृपा है।

(वरिष्ठ साधक श्री बंसीधर बिहाणी, नयाशहर, बीकानेर वालों के माध्यम से साभार प्राप्त)

♦♦

कार्य उसीके सिद्ध होते हैं, जो जगत् के काम आता है

आजादी के दीवाने

(2)

परम पूज्य स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज से मेरा प्रथम परिचय सन् 1930 में हुआ। एक दिन मेरे गाँव हसनपुर जिला आगरा के पास सड़क से जा रहे थे। मैं भी उधर जा निकला, तो सहसा भेंट हो गई। मैंने सश्रद्धा चरण स्पर्श किया। पू.पा. ने शुभाशीर्वाद दिया और गुरु मंत्र 'शरण तेरी' प्रदान किया। मैं उन्हें अपने गाँव ले आया।

उन दिनों महात्मा गाँधीजी द्वारा संचालित स्वतंत्रता-संग्राम का 'नमक-सत्याग्रह' चल रहा था। उसी संदर्भ में हमारी 5-6 व्यक्तियों की एक टोली प्रचार के लिए निकली। उसमें श्री स्वामीजी भी सोत्साह शामिल हुए। वे उस टोली के आगे-आगे स्वयं झंडा लेकर, साथ ही बड़े मधुर व ऊँचे स्वर से गाते चलते थे-

''भारत न रह सकेगा, हरगिज गुलाम खाना।
आज़ाद होगा, होगा आता है वह जमाना।''

उसी आन्दोलन में आप जेल भी गए। आपको 6 माह का कारावास हुआ था। एटा की जेल में रहे। वहाँ जेल में गाँधी का नमक खाना चाहते थे - कौन देता? नहीं मिला तो 6 माह बिना ही नमक का भोजन किया। जेल में खद्दर के कपड़े पहनने को मांगे - नहीं मिले तो सर्दी के दिनों में भी 6 माह तक वस्त्रविहीन दिगम्बर वेष में जेल में रहे। पुन: सन् 1932 ई. में हमारे गाँव में आए और लगभग 1 माह गाँव से अलग सत्याग्रह शिविर में रहे। तदुपरांत जब आगरा आते रहे तब आपका साक्षात्कार होता रहता था। बड़े प्रेम से मुझे गले लगा लेते थे।

- श्री अल्फत सिंह चौहान
भू.पू. एम.एल.ए., आगरा

(जीवनदर्शन-संत स्मृति अंक वर्ष 10 अंक 4-5 से साभार)

♦♦

जैसे सारा प्रवचन मेरे ही लिए दिया गया है
(3)

वर्ष 1958 की बात है। तब मैं पाली (मारवाड़) में सहायक अधीक्षक (पुलिस) के पद पर कार्यरत था। मुझे किसी ने सूचना दी कि पाली में एक प्रज्ञाचक्षु (नेत्रहीन) संत, मुड़ियार ठिकाने के जागीरदार कुंवर केसरीसिंह जी चारण के निवास पर ठहरे हुए हैं। नित्य प्रवचन करते हैं, तथा मानव जीवन की गूढ़ से गूढ़ समस्या का समाधान तत्काल कर देते हैं। सूचना देने वाले सज्जन के साथ ही दूसरे दिन प्रात:कालीन 7.00 बजे के उनके सत्संग - प्रवचन में मैं भी पहुँच गया। उनके प्रथम प्रवचन ने ही मुझे मुग्ध व चमत्कृत कर दिया। मुझे लगा जैसे सारा प्रवचन मेरे ही लिए दिया गया है।

प्रवचन के पश्चात् संत ने कहा - किसी भाई-बहिन के जीवन संबंधी कोई व्यक्तिगत प्रश्न हो तो बताने की कृपा करें। मैंने प्रश्न किया - महाराज! जीवन जीने की कला बताने की कृपा करें। उत्तर मिला - मानव के जीवन में दो ही परिस्थितियाँ होती हैं - सुखमय या दु:खमय। सुखी को देखकर प्रसन्न हो जाना तथा दु:खी को देखक करुणित हो जाना, यही जीवन जीने की कला है।

मेरा अगला प्रश्न था - महाराज! जीवन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर था - अपना काम बना लेना। अपना काम बनेगा प्राप्त के सदुपयोग से। विधान से हमें तीन शक्तियाँ मिली हैं - करने की, जानने की व मानने की। करने की शक्ति का प्रतीक शरीर है जो संसार की जाति का है। अत: शरीर से संसार के काम आ जाओ। जानने की शक्ति का प्रतीक बुद्धि। इसके द्वारा अपने को जानकर अहं शून्य हो जाओ। तथा मानने की शक्ति का प्रतीक हृदय। इसे प्रभु की प्रीति से भर लो। प्राप्त का सदुपयोग हो जाएगा तथा तुम्हारा काम बन जाएगा। दो-चार और भी उपस्थित जनों ने प्रश्न किए जिनके सटीक उत्तर महाराज के श्रीमुख से सुनने को मिले।

प्रश्नों के ऐसे अप्रत्याशित समाधान मुझे जीवन में पहली बार सुनने को मिले थे। मैं तो उनसे इतना प्रभावित हो गया कि बाद में पाँचों दिनों के प्रात:कालीन

प्रवचन मैंने बेनागा, पूरी उत्कंठा से सुने। उनके कतिपय सूत्रों ने तो मुझे दृष्टि प्रदान की। वे हैं –

कुछ न चाहो काम आ जाओ
कोई और नहीं कोई गैर नहीं, आदि।

मैं इनके साहित्य का भक्त बन गया। मुझे अनेकों जीवन-सूत्र मिले। अजमेर में जनसेवा आयोग का अध्यक्ष रहते हुए मैंने मानव सेवा संघ की अजमेर शाखा का प्रधान पद भी संभाला। मुझे लगता है कि उनके द्वारा प्रदत्त सूत्रों में से एक भी सूत्र यदि जीवन में पूरी तरह से उतर जाये तो मानव मात्र का कल्याण सुनिश्चित है। **उनका दर्शन व साहित्य तो संजीवनी शक्ति का भंडार है।**

– डॉ. ज्ञानप्रकाश पिलानिया
भूतपूर्व महानिदेशक (पुलिस)
राजस्थान

♦♦

यदि ज्ञान और प्रेम का विभाजन हो जाय, तो ज्ञान-रहित प्रेम काम में और प्रेम-रहित ज्ञान शून्यता में आबद्ध करता है, जो अभाव रूप है। ज्ञान और प्रेम में विभाजन संभव ही नहीं है। जिज्ञासा की पूर्ति में प्रेम का प्रादुर्भाव और प्रेम की अभिव्यक्ति में जिज्ञासा की पूर्ति स्वतः होती है

संतवाणी

मन में अत्यन्त अफसोस है कि .....

(4)

हम ग्राम अवारी के ही रहने वाले हैं। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज यहाँ चम्बल तट की गुफा में रहते रहे। हमें यह लगता कि ये यहाँ गुफा में क्यों रहते हैं, एक तरह से मन में विरोध भी था।

मैं उत्तर रेलवे की सर्विस में था। डॉ. एच.एस. राव रेलवे डॉक्टर थे। वे स्वामीजी महाराज के परम भक्त हैं। आजकल बरेली में ही स्थायी रूप से रहते हैं।

दिसम्बर 1974 में स्वामीजी के महाप्रयाण के पश्चात् वर्ष 1975 में हमारे ऊपर कोई भयंकर संकट आ पड़ा। डॉ. एच.एस. राव को इसकी जानकारी मिली तो उनके मुख से निकला - स्वामी शरणानंद। बोले - हमारी माताजी नित्य कानपुर में मानव सेवा संघ के सत्संग समारोह में जाती हैं। आप भी चलें।

मुझे जंच गई और उनकी माताजी के साथ मैं भी कानपुर सत्संग में जाने लगा। वहाँ से मैंने स्वामीजी का साहित्य खरीद कर पढ़ा। धीरे-धीरे मेरे सारे संकटों का निवारण हो गया। आज तो सारा दर्शन व साहित्य मेरे रोम-रोम में बस गया है। आज मैं 80 वर्ष का हो गया हूँ। **मन में अत्यंत अफसोस है कि संत की उपस्थिति में मैं उनको समझ नहीं पाया।**

- जगदीश सिंह
ग्राम - अवारी (इटावा)

♦♦

नवीनता का भोगी, सनातन का पुजारी नहीं हो सकता
- संतवाणी

ऊँचे दर्जे का शिष्य

(5)

डिग्गी हाउस जयपुर में महाराज जी दो माह ठहरे थे। उन दिनों ''मानव की माँग'' पुस्तक लिखायी जा रही थी। साथ ही रोजाना सत्संग की बैठक भी होती थी। मेरा मन स्वामीजी की तरफ खिंचता चला गया - रोजाना सत्संग में जाकर एक तरफ बैठ जाता।

मुझे माता-पिता से सुनने को मिला था कि ''जिन्दगी में ज्ञान-गुरु जरूर होना चाहिए।'' जहाँ कहीं मंदिर, दर्शन, सत्संग, गुरु-द्वारा, साधु-संगत में जाता, तो मन ही मन इसकी तलाश रहती। लेकिन कहीं पर मन जमता नहीं था। जब यहाँ आया तो इस दृष्टि से भी सोचने लगा।

यह बात तो मन में जंच गयी कि ये महाराज जैसा बोलते हैं, वैसा ही इनका जीवन है। विचार मंथन चलता रहा। एक दिन अचानक मन में प्रश्न उठा कि ''रामकिशन! तू गुरु को परख रहा है? कैसे परख सकेगा तू? कम जानने वाला अधिक जानने वाले को कैसे परख सकेगा? बस! तू तो अपने को छोड़ दे।''

अगले दिन मैंने अपनी इच्छा महाराज जी से जाहिर कर दी।

उन्होंने केवल इतना कहा : - ''समय से थोड़ी देर पहले आया करो।''

अगले दिन जब पहुँचा तो देखा - पुस्तक लिखाने के बाद - स्नान करके कपड़े पहन रहे हैं। उसके बाद सत्संग के लिए तख्त पर बैठ जाते थे। एक दिन मैं कुछ लेट पहुँचा। महाराज जी का एक पांव दरी के ऊपर और दूसरा दरी के नीचे था। मेरे मन में खयाल आया ''मैं और दिन से लेट तो हूँ लेकिन सत्संग के टाइम से तो पहले ही पहुँचा हूँ।'' यह बात मेरे मन में ही थी कि महाराज जी ने मेरी ओर देखा - पूछा - रामकिशन? आगे कुछ बोले नहीं। स्टेज पर जाकर बैठ गये।

इसका प्रभाव मुझ पर यह पड़ा कि महाराजजी यह जता रहे हैं कि तेरे मन में क्या है - सो मैं जानता हूँ, जान रहा हूँ, जान गया हूँ।

इस घटना के बाद ही शायद 5-10 दिन बाद ही, महाराज जी ने मुझे अपना लिया और स्वीकृति दे दी। स्वीकृति किस प्रकार दी? यह बता नहीं सकूँगा। बताने की बात है भी नहीं। यह मेरे मिलन की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना है।

इन्हीं दिनों की एक घटना है। महाराज जी के जयपुर से जाने की बात चल रही थी। मैंने सोचा - इन महाराज जी का मेरे पास कोई नाम, पता, फोटो तो है नहीं। कभी याद आयी तो क्या करूँगा? इनके नजदीकी लोगों से पूछा - ''मुझे स्वामीजी का चित्र चाहिए। मैं फोटोग्राफर का इन्तजाम करके चित्र ले लूँगा, क्या स्वीकृति मिलेगी?''

''महाराज जी चित्र पसन्द नहीं करते!'' उन लोगों ने बताया। मैं था नया-नया चेला। मन में आया — कौन सा महाराज जी को दिखायी देता है? अपनी होशियारी से फोटो खिचवा लूंगा। अगले दिन फोटोग्राफर आया। जहाँ महाराज जी बैठते थे, उनके सामने कैमरा फिट कर दिया। ज्यों ही महाराज आकर बैठे - बटन दबाया और काम खत्म। मैं भी सत्संग में एक तरफ जाकर बैठ गया। मन फूला नहीं समा रहा था- जैसे कि आज मैंने कोई बड़ी बहादुरी का काम कर लिया है।

हमेशा की तरह सत्संग के शुरू में प्रार्थना होती थी। आज भी होती है। सब लोग जानते हैं। लेकिन उस दिन क्या हुआ? आश्चर्य की बात कि उस दिन महाराज जी प्रार्थना के पहले ही बोल उठे :-

- जो शिष्य गुरु का चित्र लेकर हार चन्दन चढ़ाये, पूजा-सेवा करे— है तो प्रेमी, पर है घटिया दर्जे का।

- और जो शिष्य, चित्र लेकर, गुरु की बात पर चले, अपना जीवन बनाये-वह भी प्रेमी है - पर है दोयम् दर्जे का।

- ऊँचे दर्जे का शिष्य वह है जिसे गुरु के चित्र की जरूरत ही नहीं पड़े, और उसकी बतायी बात पर अमल करे।

महाराजजी की ये बातें सुनकर, मेरी कैसी हालत हुई, सो बयान नहीं कर सकता। पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इतना बतादूं कि वह फोटो आज भी मेरी अलमारी में ज्यों-का-त्यों बंद पड़ा है।

- रामकृष्ण छाबड़ा

('जीवनदर्शन' जून 1994 से साभार)

♦♦

मैं तो पचास प्रतिशत लुट गया
(6)

ईस्वी सन् 1965 की बात है। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज राजस्थान लोक सेवा आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष श्री लक्ष्मीलालजी जोशी के सवाई रामसिंह रोड़ स्थित निवास पर ठहरे हुए थे। रात्रि को उनके यहाँ चोरी हो गई। चोरों ने जिस गठरी में सामान एकत्र किया उसे स्वामीजी महाराज की दालान में सूख रही लंगोट से बांध कर ले गए।

सुबह हचलच हुई। स्वामीजी महाराज को जानकारी दी गई तो महाराज ने जोशीजी से पूछा – कितना सामान गया होगा?

जोशीजी ने कहा – महाराज! कोई खास सामान नहीं गया।

स्वामीजी महाराज ने विनोदी लहजे में कहा, 'महाराज! आपका तो दो-चार-पाँच परसैंट सामान गया होगा पर मैं तो पचास प्रतिशत लुट गया।' स्वामीजी के पास तो पहनने के लिए दो ही लंगोट जो रहते थे।

उनकी यह बात सुनकर घर के लोग हँसने लगे। वातावरण हल्का-फुल्का हो गया।

– शांतिस्वरूप गुप्ता

♦♦

प्रश्न – महाराज! गुरु की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
उत्तर – गुरु बनने के लिए।

सारा परिवार कृतज्ञ

(7)

मेरे पूज्य दादाजी श्री गोविन्दप्रसादजी अग्रवाल को सन् 1958 में ही स्वामी शरणानंदजी महाराज की सन्निधि प्राप्त हो गई थी, जबकि वे धौलपुर ग्लास वर्क्स के जनरल मैनेजर थे। रिटायरमेंट के बाद तो वे मानव सेवा संघ के जयपुर स्थित प्रेम-निकेतन आश्रम में रहने लगे थे। संयोग से बालपन में मुझे भी उनके साथ सीतारामजी के मंदिर, बड़ी चौपड़, जयपुर के सत्संग समारोहों में जाने का सुअवसर प्राप्त होता रहता था। वहाँ प्रतिवर्ष स्वामीजी महाराज व देवकी माताजी के प्रवचन होते थे। मैं उनकी कही हुई बातों को उस समय तो इतना नहीं समझता था परंतु उनकी वाणी के आकर्षण की स्मृति आज भी मेरे अंतर्मन में अंकित है।

आज मैं 59 वर्ष का हो गया हूँ। अब स्वामीजी महाराज के दर्शन व साहित्य की बातें समझने भी लगा हूँ। प्रयत्न यही करता हूँ कि मिले हुए का सदुपयोग करूँ। स्वामीजी महाराज की जो बात मुझे पूरी तरह से जंची वह है कि -

मिला हुआ तो संसार की जाति का है और ''मैं'' परमात्मा की जाति का है।

यह बात बुद्धि के स्तर पर पूरी तरह से फिट बैठ गई है। जीवन में भी उतर जाए तो अपने कल्याण के लिए और क्या चाहिए - ऐसा मेरा विचार है। मेरे पूज्य चाचाजी आजकल प्रेम-निकेतन आश्रम, जयपुर में ही सपत्नीक निवास कर रहे हैं। अत: मुझे भी वहाँ जाने का सुअवसर प्राप्त होता रहता है।

हमारा सारा परिवार स्वामीजी महाराज के दर्शन व साहित्य के प्रति कृतज्ञ है। मेरी अपनी समझ के अनुसार यह दर्शन व साहित्य ही आने वाले समय में मानव मात्र के काम का होगा। क्योंकि धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर जितने संघर्ष व विसंगतियाँ संसार में आज व्याप्त हैं उनका अंत इसी दर्शन से होगा, ऐसा मैं मानता हूँ। इस दर्शन व साहित्य में किसी प्रकार का दुराग्रह, कठमुल्लापन व बंधन नहीं है।

यह प्रकृति के मंगलमय विधान पर आधारित मानवमात्र को स्वाधीनता, मुक्ति व प्रेम प्रदान करने का राज-मार्ग है - ऐसी मेरी समझ है।

- पदम नारायण अग्रवाल

भारत पोटरीज हाउस, जयपुर

◆◆

कि यह शरीर विश्व रूपी वाटिका की खाद बन जाए

(8)

मेरी उम्र 8 वर्ष की रही होगी कि मेरे पूज्य पिताजी अजमेर से लौटे थे। वे वहाँ मानव सेवा संघ के स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के 7 दिवसीय सत्संग समारोह में शामिल हुए थे। लौटकर उन्होंने मेरी पूज्य माताजी को शिविर संबंधी जानकारी देते हुए जो बातें बताईं उनमें से कुछ तो आज भी मेरे घट में पूरी तरह से अंकित हैं। जैसे -

''हमें जो कुछ भी प्राप्त है वह प्रभु की अहैतुकी कृपा से मिला है। अतः सबसे पहले हमें अपने चित्त को शुद्ध करना चाहिए और मिले हुए का सदुपयोग जगत् की सेवा में करना चाहिए, आदि।''

इस प्रकार आरंभ ही से जीवन में सेवा भावना के बीजारोपण हो गए थे।

बाद में पू. पिताजी ऋषिकेश रहने लगे थे। जहाँ पूज्य देवकी माताजी के प्रवचन सुनने का सुअवसर उन्हें प्राप्त होता रहा। मैं भी कभी-कभी वहाँ सपरिवार जाता तो मानव सेवा संघ की बातें उनके श्रीमुख से सुनने को मिलती थीं। मुझे निश्चय हो गया कि सारे जगत् को नारायण स्वरूप जानकर उसकी सेवा करने में ही सार है। स्वामीजी महाराज के दर्शन का सारा निचोड़ निम्न सूत्रों में आ जाता है-

1. **करने में सावधान तथा होने में प्रसन्न।**
2. **सेवा जगत् के लिए, त्याग अपने लिए तथा प्रीति प्रभु के लिए उपयोगी होती है - आदि**

संयोग से उदयपुर में डॉ. आर.के. अग्रवाल जैसे मनीषियों व समाज सेवकों का सान्निध्य मिला। उन सबकी प्रेरणा से नारायण सेवा संस्थान की स्थापना की गई। मेरा प्रयत्न है कि मैं इस संस्थान के माध्यम से सपरिवार जगत् की इतनी अहंशून्य सेवा कर सकूँ कि - **यह शरीर विश्व रूपी वाटिका की खाद बन जाए।**

- साधु कैलाश 'मानव'
संस्थापक - नारायण सेवा संस्थान, उदयपुर

♦♦

अरे भाई! इतनी जल्दी क्या थी?

(9)

मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करके देखा है कि यदि आप होनेवाली घटनाओं को महत्त्व नहीं देते हैं, अपनी सहज स्थिति में शांत होकर रह सकते हैं, तो आपके विचार इतने स्पष्ट हो जाते हैं कि किसी के साथ किसी प्रकार का व्यवहार करने में प्रेम और सावधानी बनी रहती है। प्रियता बनी रहती है व कोई गडबड़ी भी नहीं होती।

सत्संग का प्रभाव अचूक है। जिस किसी ने किया वह अवश्य ही सफल हुआ। स्वामाजी महाराज ने कहा है कि एक बार का किया हुआ सत्संग, सदा के लिए हो जाता है। एक बार किसी ने स्वीकार किया परम प्रेमास्पद से आत्मीय संबंध को, तो वह संबंध उसको परम प्रेमास्पद के प्रेम से मिलाकर ही रहता है।

कितना अच्छा होता कि हम सब लोग अपनी वर्तमान दशा में जहाँ हैं, वहीं से आगे कदम बढ़ाने के लिए, किसी भी रूप में किसी एक सत्य को स्वीकार कर लेते। तो अभी से इसी क्षण से, हमारी आपकी प्रगति आरम्भ हो जाती। घटनाओं का प्रभाव, परिस्थितियों का प्रभाव, इच्छाओं की पूर्ति-अपूर्ति का प्रभाव तो तत्काल ही खत्म हो जाता है।

स्वामीजी महाराज ने एक घटना सुनाई थी कि एनीबीसेन्ट के आश्रम में आग लग गई और करीब सवा-डेढ़ लाख की सम्पत्ति जल गई। तो सब आश्रमवासी लोग - माताजी! अब क्या होगा? माताजी चुपचाप गंभीर हो देख रही थीं वह दृश्य। कुछ ही घंटों बाद एक व्यक्ति आया और तीन लाख रुपए देकर माताजी से कहने लगा कि अच्छे काम में यह धन लगा दीजिएगा।

देने वाला तो चला गया, पर माताजी अकेले में उमड़े हुए हृदय से परमात्मा से कहने लगीं कि **अरे भाई! इतनी जल्दी क्या थी?** इतनी जल्दी आपने क्यों भेज दिया, थोड़े और ठहरते? ईश्वर विश्वासी, सेवा भावी जो होते हैं, वे इस प्रकार की प्रतिकूल घटनाओं में भी विचलित नहीं होते कि हाय! अब क्या होगा?

जो अपने को परमात्मा का सेवक मानेगा, मालिक की दी हुई सम्पत्ति का साधन दृष्टि से उपभोग करेगा, तो क्या मालिक क्षति से अनजान है? मालिक क्या उस क्षति-पूर्ति में असमर्थ है? नहीं है। **मालिक अनजान भी नहीं है और असमर्थ भी नहीं है।**

- देवकी माताजी

♦♦

संसार से अपना मूल्य बढ़ालो
यही तप है
अपनी प्रसन्नता के लिए किसी अन्य की ओर मत देखो
यही मुक्ति है
सब प्रकार से प्रभु के होकर रहो
यही भक्ति है

- संतवाणी

मैंने तेरी छांह लही, तूने मेरी.....

(10)

मेरे भीतर जीवन की पूर्णता की आशा श्री स्वामीजी महाराज के वचनों को सुनकर ही जागृत हो गई थी। फिर भी मनुष्य के व्यक्तित्व की गरिमा का एक चित्र जो पहले से मेरे मस्तिष्क में बना हुआ था, उसकी प्रधानता के कारण पहले अपना पुरुषार्थ ही सूझता था। उस समय के लिए वही ठीक था।

परन्तु अब, जब कुछ भी कर सकने का सामर्थ्य नहीं रहा, सन्त-कृपा एवं भगवत्कृपा से मृत्यु के कगार पर बैठी हुई दशा में भी जीवन की पूर्णता की ओर प्रगति की निरन्तरता में कोई क्षति नहीं दिखाई देती। भगवान् की कृपामयी गोद में बैठकर संसार के बंधन से मुक्त हो जाने की आशा और उल्लास से उल्लसित होकर मैं गाती हूँ -

''मैंने तेरी छांह लही,
तूने मेरी बाँह गही।''

अनन्त सामर्थ्यवान, अनन्त ऐश्वर्यवान् एवं अनंत माधुर्यवान्, जो मेरे आपके सभी के अपने हैं, वे प्यारे प्रभु लालायित हैं माया मोह के जाल से हमें मुक्त करने के लिए। अत: अपनी ओर न देखकर हम उनकी करुणा, महिमा और उनकी सभी प्राणियों के प्रति आत्मीयता एवं शरणागत वत्सलता की ओर देखें।

जीवन धन्य हो जायेगा।

- देवकी माताजी

♦♦

दूसरों के सुख में प्रसन्न हो जाना, तथा दूसरों के दु:ख से करुणित होजाना, यही मानवता की कसौटी है

- संतवाणी

शुभ-संकल्प - प्रभु-प्रदत्त
(11)

बात, वर्ष 1967 की है जबकि स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज व देवकीमाताजी के सान्निध्य में आदर्श नगर, जयपुर के गीता भवन में सात दिवसीय सत्संग समारोह आयोजित किया गया था। संयोजक थे - श्री रामकृष्णजी छाबड़ा। 15 अगस्त, 1967 के दिन मैं तथा एक नेत्रहीन भाई श्री भरोसीलाल जैन, हम दोनों गीता भवन में स्वामीजी के समक्ष उपस्थित हुए तथा अपना परिचय देते हुए उनसे निवेदन किया--

'महाराज! राजस्थान में नेत्रहीनों की संख्या अत्यधिक है। जयपुर जैसे नगर में उनकी सार-संभाल करने वाला कोई भी संगठन नहीं है। हमें प्रेरणा हुई है कि उनकी सेवा के लिए कोई संगठन स्थापित किया जाए। इस काम के लिए आपका आशीर्वाद चाहिए।'

स्वामीजी महाराज ने फरमाया - बहुत अच्छी बात है कि नेत्रहीनों की सेवा करने का शुभ संकल्प आप लोगों के मन में आया। समझ लो कि शुभ संकल्प प्रभु प्रदत्त होता है, जिसे प्रभु ही पूरा करते हैं। आपको तो पूरी शक्ति के साथ विधिवत अपना काम पूरा करना है। फिर तो मंगलमय विधान अपना काम पूरा करेगा।

हम देख रहे हैं कि उस समय स्थापित राजस्थान नेत्रहीन कल्याण संघ आज जयपुर में नेत्रहीनों की सेवा का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जिसमें लगभग 50 नेत्रहीन हर समय बने रहते हैं, तथा सेवा प्रवृतियाँ सुचारु रूप से चल रही हैं। संघ के पास आज इतना बड़ा भवन है जिसकी कल्पना हमने तो कभी की ही नहीं थी।

- शांतिस्वरूप गुप्ता

◆◆

की हुई भूल न दोहराने पर वह स्वत: मिट जाती है

यह न पूछो कि वे कौन थे?

(12)

इटावा (उत्तर प्रदेश) में सत्संग कार्यक्रम चल रहा था। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज चम्बल तट गुफा (उदी-अवारी) से नित्य सायंकाल लोगों के साथ इटावा पधार जाते थे। सत्संग के पश्चात् दिन में वापस आ जाते रहे।

एक दिन एक साधक (नाम याद नहीं) ने स्वामीजी महाराज से कहा कि उनका मन आज गुफा ही पर ठहरने का हो रहा है। स्वामीजी ने उन्हें ठहरने की अनुमति दे दी तथा सुबह जल्दी ही इटावा सत्संग में आने का कह गए।

यह क्षेत्र डाकू मानसिंह का था। अत: रात्रि के समय उन साधक के मन में थोड़ा भय उत्पन्न हो गया। फिर भी वे चुपचाप आसन पर भजन करने बैठ गए। थोड़ी ही देर पश्चात् क्या देखते हैं कि नीचे नदी की धारा की तरफ से एक मनुष्याकार आकृति हाथ में कोई चमकदार वस्तु लेकर गुफा की तरफ धीरे-धीरे आ रही है। मन में संदेह हुआ कि कोई डाकू तो नहीं है। वे शांति से देखते रहे।

इतने ही में एक साथ दो आकृतियाँ दिखने लगीं। और नजदीक आने पर देखा कि दो किशोर बालक हैं। गुफा के गेट पर आकर बोले - 'आपके लिए दूध लाए हैं।' उनकी उत्तर देने की हिम्मत नहीं हुई। पास पड़े पात्र में दूध डाल देने का संकेत कर दिया। वो दूध डालकर वापस चले गए। देखा तो दूध गरम था, जिसे पीकर तृप्त हो गए।

प्रात: उन साधक को इटावा सत्संग में पहुँचने में विलंब हो गया तो स्वामीजी महाराज चिंतित होने लगे। उनके वहाँ पहुँचते ही बोले - 'हमें आपके न आने से चिंता हो रही थी। हमसे बड़ी भूल हो गई। उदी से चलते समय आपके खाने-पीने का भी कोई प्रबंध नहीं कर पाये।' साधक महोदय ने स्वामीजी महाराज को जानकारी दी कि 'रात को दूध तो हमें दो किशोर बालक दे गए थे?'

यह कहकर पूछा - 'महाराज! वो कौन थे?'

स्वामीजी भाव विह्वल हो गए। उनको अश्रुपात होने लगा। भरे गले से बोले- **'भैय्या यह न पूछो कि वे कौन थे?'**

- जगदीश सिंह

ग्राम अवारी (इटावा)

♦♦

और पुनः स्वस्थ हो गए

(13)

संवत् 2006 में पूज्य स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का चातुर्मास पुष्कर आनंद कुटीर में था। एक दिन 3-4 ठिकानों के ठाकुर आकस्मिक, स्वामीजी महाराज के सत्संग का कार्यक्रम प्रातः 8.00 बजे का समाप्त होने का था, उस समय पहुँचे और स्वामीजी महाराज से निवेदन किया कि 'स्वामीजी! हमारा कैसे कल्याण हो सकता है? हमने अपने जीवन में अनेक पशुओं को मारकर खाया है, पाप किया है। स्वामीजी महाराज ने तत्काल कहा कि आज के पहले आपने जो पाप किए हैं वे मुझे दे दो और आज के बाद किसी प्रकार का पाप न करने के लिए दृढ़ संकल्पित हो जाओ।'

सत्संग समाप्त हुआ और स्वामीजी महाराज भी बाबा हरिनाथजी (नाथजी) के कंधे पर हाथ रखकर अपने नियमित विश्राम भवन में सीढ़ियाँ चढ़कर जाने लगे। तब नाथजी महाराज ने कहा कि - स्वामीजी आज आपके हाथ और शरीर बहुत गर्म हो रहे हैं। स्वामीजी ऊपर चढ़कर अपने तख्त पर तत्काल सो गये और उन्हें भारी बुखार हो गया। प्रतिदिन सत्संग में भाग लेने वाली डॉ. श्यामा बाघ को बुलाकर बुखार नापा जो 104 डिग्री था। अजमेर की कृष्णा बाई डोंगरे, जिनके कोई संतान नहीं थी, ने एक बार स्वामीजी से वृंदावन जाकर कहा कि स्वामीजी मेरे संतान नहीं है। स्वामीजी ने तत्क्षण कहा - माँ! तुम मुझे अपना पुत्र मान लो। तबसे यदा-कदा वो स्वामीजी को पुत्रवत् सस्नेह भोजन कराती थीं।

उनको सत्संग के किसी श्रोता ने जाकर कहा कि स्वामीजी ने आज कुछ प्रतिष्ठित ठिकानेदारों के पाप अपने ऊपर ले लिए। अतः उन्हें भारी बुखार हो गया है। वह तत्काल भोजन बनाने का काम छोड़कर स्वामीजी महाराज के पास गईं व रुंधे कंठ से बोली, 'भैय्या! तुमने बहुत बुरा किया। पापियों का पाप अपने ऊपर क्यों लिया?' स्वामीजी महाराज उन माता की डाँट सुनकर हँसने लग गये, वापस कुछ नहीं कहा। बुखार से प्रभावित होने के कारण वे तीन समय सत्संग में नहीं आ सके और पुनः स्वस्थ हो गए।

- लादूसिंह राजपुरोहित
मझेवला (अजमेर)

♦♦

यहाँ तक कि प्राणांत भी संभव था

(14)

सन् 1954 में परम पूज्य स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का हमारे इस छोटे से गाँव मझेवला में तीसरी बार पदार्पण हुआ। तीन दिन तक मझेवला और पास के गाँव कड़ैल में सत्संग का आयोजन हुआ। पूज्य स्वामीजी महाराज और हरीनाथजी महाराज रात को मझेवला में नई बनी धर्मशाला में ठहरे थे। रात को मैं भी उनके पास ही सो रहा था।

करीब 2 बजे स्वामीजी अपने पाटे से उठे और बोले, 'नाथजी! अभी मुझे ऐसा स्वप्न आया कि एक अबला माई भक्त रो रही है। वह बहुत ही दुर्बल व बीमार सी है।'

नाथजी महाराज ने कहा, 'महाराज! पास में सो रहे लादूसिंह की दो बहनें तो आपके सत्संग का लाभ यहाँ ले रही हैं। परन्तु एक बहिन अत्यधिक बीमार होने से बार-बार तड़पड़ा कर बोलती बताई कि 'मुझे स्वामीजी के दर्शन करवा दो।' उन्होंने अपने गाँव पाल्यास जिला पाली - मारवाड़ से अपने देवर सोहनलाल को आपको वहाँ लेजाने के लिए यहाँ भेजा है। परन्तु आपके दर्शन उन्हें आज सुलभ होना संभव नहीं लगता। आज प्रातः 7.30 से 9.00 बजे तक का आपका सत्संग कार्यक्रम तो आर्य समाज भवन, कड़ैल में रखा है। अपराह्न 3.00 बजे का कार्यक्रम उम्मेद मिल, पाली के जनरल मैनेजर श्री मोहनलालजी गुप्ता ने पाली में रखा है, जहाँ निश्चित समय पहले पहुँचना पड़ेगा।

स्वामीजी महाराज ने पूछा, 'क्या पाली पाल्यास होकर नहीं जाया जा सकता?' पता लगाने पर जानकारी मिली कि पाल्यास गाँव पहाड़ियों के बीच आया हुआ है, जहाँ पक्की सड़क भी नहीं है - रास्ता कच्चा है। पाली के भूतपूर्व विधायक ठाकुर साहब बारहटजी, जो सत्संग में पधारे थे, ने कहा कि महाराज! लगभग 12 कोस (40 कि.मी.) ज्यादा चलना पड़ेगा। मैं जीप से आपको पाल्यास होते हुए समय पर पाली पहुँचाने का प्रयास कर सकता हूँ।

तदनुसार सत्संग समाप्त होते ही तत्काल 9.00-9.15 बजे रास्ते का भोजन साथ लेकर हम 7 व्यक्ति (स्वामीजी महाराज, नाथजी, मीरांबाईजी, हरीभाई, मैं तथा मेरी दोनों बहनें) कड़ैल से बारहठजी की जीप में रवाना होकर पीसांगन होते हुए केसरपुरा गाँव पहुँचे। आगे का रास्ता विकट होने के कारण हम आगे नहीं बढ़े। रास्ते में एक खेजड़ी की छांह में ठहर कर भोजन किया और एक मिट्टी की हांडी में से दही लेकर सबने स्वामीजी महाराज को खिलाया। कुछ ने तो उन्हें कन्हैय्या कह-कह कर चुल्लू से ऐसे खिलाया कि बाबा का सारा शरीर, दाढ़ी, मूंछें, दही से लथपथ हो गये।

पता नहीं उन्हें क्या सूझा कि हमें वहाँ ही छोड़कर स्वामीजी महाराज, नाथजी व हरीभाई जीप से पाली चले गये। मैं और मेरी दोनों बहनें केसरपुरा से दो कोस पैदल चलकर पाल्यास पहुँचे। बीमार बहन (गुलाबबाई) ने हमारे वहाँ पहुँचने की बात सुनी तो वे बेहोश हो गईं। 2 घंटे बाद उन्हें होश आया तो उनसे बातें हुईं। उन्होंने कहा कि पूज्य स्वामीजी व नाथजी महाराज यहाँ पधार जाते तो मुझे दर्शन का सौभाग्य तो प्राप्त हो जाता मगर मैं उस खुशी को झेल नहीं पाती- अधिक बेहोश हो जाती, यहाँ तक कि प्राणांत भी संभव था। हमारी समझ में कुछ नहीं आया। उनकी लीला वो ही जाने। ऐसा विचार कर हमने अपने मनों में समाधान कर लिया व विश्रांति प्राप्त की।

- लादूसिंह राजपुरोहित
मझेवला (अजमेर)

♦♦

जिसके होने की वेदना होती है वह अपने आप मिटने लग जाता है, तथा जिसके न होने की वेदना होती है, वह अपने आप होने लग जाता है

- संतवाणी

उसमें बदबू होती ही नहीं
(15)

श्री स्वामीजी महाराज से मेरी भेंट प्रथम बार सीतापुर में श्री महन्त बाबा मोहनदासजी के स्थान पर सत्संग में हुई थी। मैं मंच पर बोल रहा था। उसके पश्चात् महाराजजी बोलने आए। मैंने माइक छोड़ते हुए कहा, ''मेरे गुरु महाराजजी आ गए। वे अब अपने विचार व्यक्त करेंगे, आप लोग ध्यान से सुनें।'' उन्होंने विनोद में कहा, ''आते ही उपाधि तो अच्छी मिल गई। अब मैं गुरु भी बन गया।'' दूसरे दिन मैं उनसे मिलने गया, अपना परिचय दिया तो उन्होंने पकड़ कर गले लगा लिया। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं उनका अत्यंत निकट संबंधी होऊँ।

वे जहाँ कहीं भी मिलते, मुझे गले लगाकर ही आशीर्वाद दिया करते, यद्यपि मैं ऐसे आदर और प्यार के योग्य नहीं था। मैं अत्यन्त गरीब हूँ। भोजन की बात तो दूर, कपड़ों की सफाई का साधन तक नहीं था। एक बार मैंने कहा, ''महाराजजी! मुझे गले न मिलकर वैसे ही आशीर्वाद दिया करें।'' उन्होंने पूछा, ''क्या कोई कष्ट प्रतीत हुआ भइया?'' मैंने कहा, ''नहीं, मेरे शरीर और कपड़ों से बदबू आती है।'' बोले - ''मैं जिसे प्यार करता हूँ उसमें बदबू होती ही नहीं।'' यह सुनकर मैं तो भाव विभोर हो गया।

उनके प्यार और वात्सल्य से मैं कृतार्थ हो गया।

- स्वामी हरिहरानंद,
शाहजहाँपुर

♦♦

प्रेम के पथ में यह गुंजाइश नहीं है कि प्यारे प्रभु की कोई भी वस्तु प्यारी न लगे

- संतवाणी

इनमें जरूर अश्रद्धा हो जाएगी

(16)

(i)

एक बार बाड़ी (धौलपुर) में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का सत्संग कार्यक्रम चल रहा था। एक दिन निश्चित समय पर केवल दो ही साधक पधारे। तो कार्यक्रम आयोजकों ने स्वामीजी महाराज से निवेदन किया कि - 'महाराज! कार्यक्रम आरम्भ करने के लिए 5-10 मिनिट रुका जाय तो ठीक रहेगा ताकि उपस्थिति बढ़ जाए।'

स्वामीजी महाराज तत्काल बोले - 'जो लोग निश्चित समय पर नहीं आते हैं उनमें सत्संग कार्यक्रम के प्रति कितनी श्रद्धा होगी, यह तो अनुमान मैं नहीं लगा सकता। परन्तु ये जो दो साधक पधारे हैं, इनमें जरूर अश्रद्धा हो जाएगी कि स्वामीजी महाराज का सत्संग निश्चित समय पर नहीं होता है।'

यह कह कर स्वामीजी महाराज ने प्रार्थना के साथ ठीक समय पर कार्यक्रम आरंभ कर दिया।

चुने हुए प्रतिनिधि ही पधारते हैं

(ii)

अक्सर मानव सेवा संघ के सत्संग कार्यक्रमों में उपस्थिति अन्य सत्संग कार्यक्रमों की अपेक्षा काफी कम रहती है। एक बार स्वामीजी महाराज का कार्यक्रम धौलपुर में चल रहा था। उपस्थिति कम थी। एक साधक ने स्वामी से कहा -

'महाराज! मानव सेवा संघ के कार्यक्रमों में उपस्थिति अन्य कार्यक्रमों की अपेक्षा कम रहती है।'

महाराज ने तत्काल उत्तर दिया - भैय्या! मानव सेवा संघ का सत्संग तो संसद की तरह से है जिसमें केवल चुने हुए प्रतिनिधि ही पधारते हैं।

- मुकेश अग्रवाल
धौलपुर

♦♦

सारा काफिला विस्मित था

(17)

संवत् 2006 विक्रम को पूज्य स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का चातुर्मास आनंद कुटीर, पुष्कर में पहली बार हुआ था। आपके प्रवचन सुनने के लिए बड़े-बड़े आदमी आया करते थे। उन दिनों अजमेर राजस्थान का अलग राज्य था और इस राज्य के उस समय श्री हरिभाऊ उपाध्याय मुख्यमंत्री थे। श्रावण मास में श्री हरिभाऊजी द्वारा स्थापित कन्या महाविद्यालय, हटूंड़ी में वृक्षारोपण कार्यक्रम रखा गया, जिसमें मुख्य अतिथि स्वामीजी महाराज थे। पू. स्वामीजी महाराज निश्चित समय पर कार्यक्रम स्थल पर संत-समुदाय व भक्त मंडली सहित पहुँच गये। बड़े शान-शौकत व भाव-भरे कार्यक्रम में अनेक मंत्री, विधायक, अधिकारी व श्रद्धालु कारों, जीपों आदि द्वारा वहाँ पहुँचे थे। स्वामीजी महाराज ने वृक्षों की महत्ता पर अपना भाव-भरा प्रवचन दिया।

कार्यक्रम के समापन के पश्चात् सब लोग वापस लौट रहे थे। स्वामीजी महाराज व श्री हरीनाथजी महाराज जीप में सवार होकर हटूंडी से अजमेर होते हुए पुष्कर आ रहे थे। गाड़ियों का काफिला उनके पीछे था। हटूंडी व अजमेर के बीच में ट्रेनों के आने-जाने का मार्ग है, जहाँ उस समय कोई गेट नहीं बना था। दैवयोग से स्वामीजी की जीप रेलवे की पटरी पर पहुँची ही थी कि जीप ड्राईवर के हाथ से जीप की चाभी निकलकर, उछलकर बाहर गिर गई। तत्क्षण जीप रुक गई और ड्राईवर नीचे उतर कर चाभी ढूंढने लगा। उधर रेल आने का सिग्नल लग रहा था। पीछे की गाड़ियों के भक्तजनों को मालूम हुआ तो वह भी नीचे उतर कर चाभी ढूंढ़ने लगे, परन्तु नहीं मिली। आखिर सबने स्वामीजी महाराज व नाथजी महाराज को गाड़ी से नीचे उतर आने का निवेदन किया।

स्वामीजी महाराज हाथों को ऊपर उठाकर लंबी जंभाई लेते हुए बोले - तुम जीप के इस तरफ देखो, वो पत्थर के पास चाभी पड़ी है। दौड़कर देखा तो चाभी मिल गई और ड्राईवर ने फटाफट जीप स्टार्ट कर पटरी पर से नीचे उतार लिया। करीब 1-2 मिनिट पश्चात् ही ट्रेन छुकछुक करती आई और आगे निकल गई।

प्रज्ञाचक्षु संत की दृष्टि-लीला से सारा काफिला विस्मित था।

- लादूसिंह राजपुरोहित
मझेवला (अजमेर)

♦♦

वही अकेला रह जाता है
(18)

सूरदासजी का पद है –

''मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै,
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै।''

तो मैं समझती हूँ कि यह उदाहरण कितना सत्य है। चारों ओर जल ही जल। अथाह सागर विस्तार में फैला हुआ है। जहाज के मस्तूल पर कोई पक्षी बैठा हो। वह वहाँ से उड़कर कहाँ जाएगा और कहाँ तक जाएगा? उसको वहाँ कौन-सा आधार मिलेगा कि जिससे वह अपने थके हुए पंखों को विराम दे। कोई नहीं मिलेगा। जिसको छोड़कर गया था लौटकर उसी पर आना होगा। तभी उसके थके हुए पंखों को विश्राम मिलेगा। हम सब भाई-बहिनों की दशा ऐसी ही है।

प्रेमस्वरूप परमात्मा, शांतिस्वरूप परमात्मा, अविनाशी परमात्मा हमारे-आपके जीवन का उद्‌गम है। उसमें से ही हम सब निकले हैं। उसको भूल जाओ, उससे विमुख हो जाओ, तो कहाँ विराम मिलेगा? कहीं नहीं मिल सकता। मैंने ऐसी दयनीय दशा देखी है मनुष्य की।

''जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै।''

ऐसे समझो कि इस गतिशील जगत् की ओर दौड़ने की चेष्टा में हम व्यर्थ ही प्राणशक्ति गवां रहे हैं। तो क्या किया जाए?

स्वामीजी महाराज कहते हैं कि अरे भैय्या! बहती गंगा में हाथ धोलो। जो भी परिस्थितियाँ मिली हैं, उनका सदुपयोग करके, चित्तशुद्धि की साधना करके शांत हो जाओ और जो तुम्हारा उद्‌गम है उसकी ओर देखो। जो अपना है, जो अपने में है, जिसकी उपस्थिति ही हमारे जीवन की सत्ता का आधार है, उसकी ओर देखो। कैसे देखें, अब क्या करना चाहिए? गुरु की वाणी में विश्वास करो, सन्तों की वाणी में विश्वास करो। सद्‌ग्रन्थों की वाणी में विश्वास करो।

स्वामीजी महाराज ने कहा कि जीवनदाता में किसी प्रकार की कमी नहीं है। उन्होंने तुम्हारे भीतर आवश्यकता पैदा की है, तो आवश्यकता की पूर्ति का इन्तजाम भी वे करते हैं। यह इन्तजाम भी उन्हीं के पास है, ऐसा विधान भी उन्होंने बना रखा है। इसलिए आवश्यकता के आधार पर भी अगर इस सत्य को हम स्वीकार करेंगे, उस परमात्मा को मानेंगे, उस अलौकिक तत्व को जीवन का आधार बनायेंगे, तो अहंरूपी अणु में से ही वह अलौकिक तत्व अभिव्यक्त होगा। जब अहं में परिवर्तन आता है, तो दृष्टि भी बदल जाती है। मन, चित्त, बुद्धि सब बदल जाते हैं और सृष्टि भी बदल जाती है। और जब प्रेम के रस से व्यक्तित्व भर जाता है, तो प्रेमास्पद से भिन्न और कुछ नहीं रह जाता। तब भक्तजन कह उठते हैं–

''जित देखूं तित स्याममयी है।''

वही अकेला रह जाता है और कुछ नहीं रहता।

– देवकी माताजी

♦♦

संसार इतना उदार है कि
हम जितने बुरे हैं, वह हमें
उससे कम बुरा समझता है और
हम जितने अच्छे हैं उससे
अधिक अच्छा वह हमें समझता है

– संतवाणी

यह तो मेरा अपना स्थान है

(19)

संवत् 2006 में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का चातुर्मास पुष्कर आनंद कुटीर में था। उसी चातुर्मास के समापन के पश्चात् पूज्यपाद स्वामीजी महाराज, पूज्य हरीनाथ महाराज, बाला सती माताजी, उनके गुरु श्री गुलाबदासजी महाराज, भक्तिरामजी महाराज, मनोहरदासजी महाराज तथा रमैय्यारामजी महाराज - हमारे गाँव-मझेवला पधारे। उन सबका बड़ के पेड़ के नीचे तीन दिन का सत्संग कार्यक्रम चला। भक्तजनों ने सोल्लास आप सबके प्रवचनों का लाभ लिया। तीन दिन पश्चात् उन सबका अन्यत्र जाने का कार्यक्रम बना हुआ था।

अगले गन्तव्य स्थान पर जाने का सबका पूरा खर्च पिछले पड़ाव वालों द्वारा देने का उस समय नियम बना हुआ था। नाथजी महाराज के माध्यम से वह खर्च मैंने देना चाहा तो स्वामीजी महाराज ने तत्क्षण फरमाया - यहाँ के लिए यह नियम नहीं है। यह तो मेरा अपना स्थान है।

यह संयोग की बात ही है कि उसी स्थान को स्वामी श्री रामशरणजी महाराज (पूर्वनाम सरदारशहर के श्री कन्हैयालालजी दूगड़) ने जनहित आश्रम के नाम से अपनी साधना स्थली बनाई। वहाँ पूज्य स्वामीजी महाराज का बड़ा चित्र पधराया व प्रवचन स्थल पर '**यह तो मेरा अपना स्थान है - स्वामी शरणानंद**' लिखवाया। जो आज भी विद्यमान है।

- लादूसिंह राजपुरोहित
मझेवला (अजमेर)

♦♦

हम स्वयं ही अपने दुःखों के कारण हैं तभी तो हमारे सर्व-दुःखों की निवृत्ति हो सकती है। जिस दुःख का कारण कोई और हो, वह दुःख कदापि नहीं मिट सकता

तो संसार भी परमात्मा है

(20)

हम लोगों ने एक संत की जीवनी में कथानक सुना है कि एक पुण्डरीक थे। वे अपने माता-पिता की सेवा में रहते थे। सेवा में उनकी इतनी लगन थी, इतनी पवित्रता थी, इतनी निष्कामनता थी कि तन्मय होकर माता-पिता की सेवा जब करते, तो उस निष्काम सेवक की भावना का आदर करने के लिए, उसका आनन्द लेने के लिए परमात्मा से रहा नहीं गया, वहाँ आए बिना।

उस निष्काम, निर्मल सेवा करने वाले पुत्र का दर्शन करने के लिए पहुँच गए परमात्मा। वह माता-पिता की सेवा में लगा था। तो उसने कहा कि थोड़ा ठहरो महाराज! अभी सेवा कार्य थोड़ा बाकी है। पास में एक ईंट पड़ी थी। उस ईंट को उसने खिसका कर कहा कि आप थके होंगे, इस ईंट पर पाँव रखकर थोड़ा विश्राम ले लीजिए। महाराज! मैं इस सेवा कार्य को पूरा करके आपके पास आता हूँ। महाराष्ट्र में ईंट को 'विट' कहते हैं। विट पर पाँव रखकर उस भक्त की भावना का मजा लेने के लिए, उस निस्पृह सेवक की तन्मयता का रस लेने के लिए त्रिभुवन पति उस ईंट पर पैर रखकर खड़े हो गए। तो विट पर पैर रखने से उनको **'विट्ठल भगवान्'** कहा जाता है। वह बड़ा पवित्र तीर्थ स्थान है और बड़ी प्रसिद्धि है उस जगह की।

तो स्वामीजी महाराज की वाणी कितनी सत्य है कि **कामना लेकर परमात्मा के पास जाओगे, तो परमात्मा भी संसार है और निष्काम होकर संसार में रहोगे, तो संसार भी परमात्मा है।**

- देवकी माताजी

♦♦

प्रभु को अपना मानना ही वास्तविक भजन है

- संतवाणी

अहम् रूपी अणु का विस्फोट
(21)

स्वामी एकनाथजी गंगा जल लेकर जा रहे थे रामेश्वरम् पर चढ़ाने के लिए। रास्ते में प्यासा गधा मिल गया, तो गंगाजल उसीको पिला दिया। साथ के लोगों ने जब हँसी उड़ाना शुरू किया कि यह क्या किया तुमने? इतनी दूर से गंगाजल ले आए और शंकरजी पर न चढ़ाकर गधे को पिला दिया? वे आनंद की मस्ती में कहने लगे - मैं गंगाजल लेकर रामेश्वरम् तक पहुँचूं, इतनी देर भी मेरे शंकर ने प्रतीक्षा नहीं की और वे यहाँ आ गए, तो मैं क्या करूं? गंगाजल को पीने के लिए मेरे शंकर यहीं आ गए।

यह एकनाथजी की केवल कल्पना मात्र नहीं थी। जिसने केवल उस प्रभु को अपना स्वीकार किया, उसके प्यार को ही जिसने अपने जीवन का लक्ष्य माना, उसके अन्त:चक्षु खुल जाते हैं, जिससे वह देख सकता है कि सब में परमात्मा है। तब सब लुप्त हो जाता है, केवल परमात्मा ही रह जाता है, और दूसरा कुछ नहीं रह जाता। तो यह प्रेम की दृष्टि है और कुछ नहीं। **यह केवल मनुष्य के अहम् रूपी अणु का विस्फोट है।**

- देवकी माताजी

◆◆

साधक की दो ही स्थितियाँ श्रेष्ठ हैं। व्याकुलता की अग्नि जलती रहे या फिर आनंद की गंगा लहराती रहे

- संतवाणी

आज भी कोई यशोदा मय्या बन जाए
(22)

सभी भाई बहनों को, जो प्रेमी हैं और जो मत, पंथ, सम्प्रदाय के भेद को मिटा करके मानव हृदय की एकता को स्थापित करके, प्रेम का प्रसार करके, उस असीम के प्रेमी होने का लक्ष्य बनाकर चलते हैं, उनको परमात्मा के बल पर अपने को बलवान समझना चाहिए। हमें अपने बल का अभिमान नहीं करना चाहिए। प्रत्युत इस बात का गौरव होना चाहिए कि मैं तो उस अविनाशी का बालक हूँ, उस अविनाशी का दास हूँ, उस अविनाशी का मित्र हूँ, उस अविनाशी का पिता हूँ। आप अगर पिता बन जायेंगे तो बालक बनकर आपकी गोद में खेलने में भी उनको मजा आता है, डाँट सुनने में भी मजा आता है।

यशोदा मय्या की झिड़कियाँ उन्होंने सुनी हैं। रोनी-रोनी सूरत बनाकर, आँखों में से आँसू टपकाकर ऐसे खड़े हैं डर करके, कि जैसे इनको कुछ मालूम ही नहीं है। वह ऐसा दिव्य-दृश्य है, ऐसी दिव्य-लीला है कि आज कोई यशोदा मय्या बन जाए, उतना वात्सल्य हृदय में भर ले, तो आज भी वे बालक बनकर, आपके सामने वैसे ही खड़े हो सकते हैं, जैसा द्वापर युग में। हमारे भीतर, अगर किसी प्रकार का बल है तो उन सर्व समर्थ का बल है। हमारे जीवन में अगर गौरव किसी बात का है, तो इसी बात का गौरव है कि **हम उस अनन्त के चिर संबंधी हैं।**

- देवकी माताजी

♦♦

बल का दुरूपयोग करने से सबल व्यक्ति भी निर्बल हो जाता है
- संतवाणी

तो, जिताने वाले को मजा आता है
(23)

दुर्बलताओं से घिरा हुआ व्यक्ति अपने प्रयास से, अपनी ओर से चेष्टा में लगा हुआ है। तो जितना सामर्थ्य उसके पास है, उतनी ही चेष्टा उससे अपेक्षित है। कितनी बड़ी बात है! तो प्रयास कर लो अपनी ओर से और उसके बाद उस सामर्थवान् की शरण में, उस परम कृपालु की गोद में आराम करो। कैसे?

कि अब मेरे लिए करणीय कुछ भी शेष नहीं है। तो प्रयत्न चला गया न! अहम् का स्फुरण बंद हो गया न। स्फुरण बंद हो गया तो वह गलने लगा, खत्म होने लगा और उसके साथ जिस साधक ने कृपा शक्ति का आश्रय लिया, उसको उन कृपालु की कृपा शक्ति स्वयं ही जाल में से निकाल लेती है। उसकी दुर्बलताओं को मिटाती है, उसकी मलिनताओं को धोकरके साफ करती है, प्रभु के प्रेम का पात्र बनाती है। तो वह प्रक्रिया बड़ी ही आराम देह है। **साधक अपनी ओर से जब हारने लगता है तो, जिताने वाले को मजा आता है।** बहुत आनन्द की बात है। एक बार दृढ़तापूर्वक उस लक्ष्य को दृष्टि में रख करके आप उसमें लग जाएँ।

बस!

– देवकी माताजी

◆◆

मानव का शरीर काम से बना है, इसीलिए काम का नाश राम की प्राप्ति के बिना कदापि संभव नहीं

– संतवाणी

द्वारकाधीश भी ..... रह नहीं सके

(24)

राजकुमार सिद्धार्थ ने एक मृतक को देखा, तो उन्हें सब जीवित शरीरों में मृत्यु का दर्शन हो गया। मान लीजिए, इस कोटि के साधक हम नहीं हुए। हम जिस स्तर के हैं उस स्तर से हमारे विकास के लिए परमात्मा ने इन्तजाम कर दिया है कि भाई! प्रवृत्ति का राग नहीं छोड़ सकते थे, तो मोह का कुटुम्ब छोड़ करके **भगवत् नाते आश्रम के कुटुम्ब में रहो।** कमाई सम्पत्ति का लोभ छोड़ दो, और सार्वजनिक सम्पत्ति के ट्रस्टी बनकर काम करो। किसने किया यह इन्तजाम? प्रकृति ने किया है, परमात्मा ने किया है।

एक दम से सहारा छोड़ने का साहस तुममें नहीं है, तो व्यक्तिगत सम्पत्ति और उसका संग्रह और व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोभ छोड़ दो और राग निवृत्ति के लिए सार्वजनिक सम्पत्ति के ट्रस्टी बनकर काम करो। यह इन्तजाम हमारे उसी मालिक ने किया, जिसको मेरा विकास अभीष्ट है। ऐसा जब हम करने लगते हैं तो हानि और लाभ से व्यक्तित्व में सन्तुलन खोता ही नहीं। इससे अहम्‌रूपी अणु की विकृति का नाश होता है, उसमें उदारता आती है, निर्दोषता आती है, बिलकुल शुद्ध हो जाता है। तो अनन्त की विभूतियों से मिल करके अनन्त के समान अनन्त हो जाता है। अनित्य तत्व भी नित्य प्रेम की धातु में बदल जाते हैं, यह निर्विवाद सत्य है।

मीरांजी का दाह-संस्कार नहीं हुआ। उन्होंने द्वारकाधीश के सामने प्रार्थना की-

''सजन सुधि,
ज्यों जानो, त्यों लीजे।''

और अन्त में कहा -

''मिल बिछुड़न नहीं कीजे।''

तो उनके हृदय का प्रेम इतना बढ़ गया था कि द्वारकाधीश भी उनको अपने में मिलाए बिना रह नहीं सके। केवल मीरांजी का अलौकिक जो प्रेमरूपी अहम् था वही द्वारिकाधीश में नहीं गया, पंच भौतिक तत्वों से बना हुआ शरीर भी प्रेम के प्रभाव से प्रेम की धातु में परिवर्तित होकरके सशरीर मीरांजी द्वारिकाधीश में विलीन हो गईं।

यह कलियुग के भक्त की चर्चा है, इतिहास प्रसिद्ध सत्य है। ऐसे अलौकिक तत्व को अपने में रखते हुए भी हम संसार की ठोकरें खाते फिरते हैं, अपमान सहते रहते हैं। यह बड़ी ही दु:ख की बात है। हम सब लोग मोह को छोड़ दें।

हम सचमुच प्रभु के प्रेम का पात्र बनना चाहते हैं, तो जहाँ हमारा कदम है, जितना विकास हमारा अब तक हो चुका है, उससे आगे के लिए, जो कर सकते हैं, करते जाएं। पात्रता आते ही उनके प्रेम की लहरियों का स्पर्श हमें अनुभव होने लगेगा।

जब उनकी ''स्मृति'' की मधुरता से जीवन भर जाता है, तो संसार की विस्मृति अपने आप हो जाती है। फिर भक्त और भगवान् मिलकर एक हो जाते हैं। दूरी मिट जाती है, भेद मिट जाता है, भिन्नता मिट जाती है और हमारा-आपका जीवन कृत-कृत्य हो जाता है।

- देवकी माताजी

♦♦

दु:खियों के दर्शन से ही हमें अपने में सुख का भास होता है। अत: दु:खी हमारे प्यार के हकदार हैं

- संतवाणी

परमात्मा का प्रकाश

(25)

दूसरों के लिए स्वयं मधुर बनना और दूसरों से मधुर व्यवहार की आशा करना तथा दूसरों के किए हुए मधुर व्यवहार को मधुरता के रूप में अपने भीतर अनुभव करना बड़ा मीठा लगता है। कोई मेरे प्रति स्नेह-सहानुभूति रखने वाला हो, यह बात हम सबको अच्छी लगती है।

एक कैदी के संबंध में महाराजजी बता रहे थे कि उसे फाँसी की सजा हो गई थी। जेलर के आर्डर से उस कैदी को ले जाना था फाँसी देने की जगह पर। सिपाही आया और उसके दोनों हाथ पकड़कर खूब कसकर बांध दिया। जब कस कर उसको बांधा, तो दर्द होने लगा हाथ में। कैदी आँखों में आँसू भर कर सिपाही से कहने लगा - भैय्या! मैंने तुम्हारा तो कुछ बिगाड़ा नहीं है। इतना कसके क्यों बांधते हो? क्या मतलब? उसको मालूम तो था ही कि मैंने हत्या की है। फिर भी अपने प्रति उसके भीतर कितनी कोमलता की भावना है? महाराजजी कहते थे कि भाई देखो! चोर-डकैत जो होते हैं उनका भी अपना सब नियम-कायदा होता है। वे दूसरों के लिए बड़े खूंखार होते हैं। पर अपने लिए, अपने परिवार के लिए, अपनी मंडली के लिए तो उनमें भी कोमलता होती है, मधुरता होती है।

तो यह अस्तित्व का ही प्रभाव है जो हम विवेक के प्रकाश में कोमलता का, मधुरता का अनुभव कर रहे हैं। बहुत सामान्य भाव से मानव मात्र को भले-बुरे का ज्ञान सब समय होता रहता है। यह ज्ञान, यह विवेक परमात्मा का ही प्रकाश है।

- देवकी माताजी

♦♦

संग्रहित सम्पत्ति निर्धनों की धरोहर है, तथा प्राप्त बल निर्बलों की धरोहर है

- संतवाणी

बिलकुल जमीन की बात
(26)

वर्ष 1969, पुरुलिया में सत्संग समारोह का आयोजन था। मैंने पूज्य देवकी माताजी से प्रश्न किया –

माताजी अनन्य चिंतन कैसे हो?

उस समय स्वामीजी महाराज के साथ देवकी माताजी भी पधारी थीं। माताजी ने समझाया, परंतु मेरे ठीक से समझ नहीं आया। उसी समय स्वामीजी भीतर कमरे में से बाहर आये एवं अपने आप ही बोले –

अनन्य अर्थात् दूसरा कोई है ही नहीं। सुनकर मुझे संतोष हुआ। इस बार के सत्संग की जो सबसे प्रमुख बात है एवं जो मुझे बहुत जंची वो इस प्रकार है –

स्वामीजी महाराज ने सत्संग में कहा कि 'देखो भाई! परमात्मा उसे नहीं कहते जो कभी हो और कभी न हो। परमात्मा सदैव हैं। पहले भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे।'

'परमात्मा उसे भी नहीं कहते जो सर्वत्र न हो। जो कहीं हो और कहीं न हो, उसे भी परमात्मा नहीं कह सकते। अत: परमात्मा यहाँ भी है।'

'परमात्मा उसे भी नहीं कह सकते जो किसी का हो और किसी का न हो। अत: सबका होने से मेरा अपना भी है।'

अर्थात्

'मेरा अपना परमात्मा मेरे में अभी है। तो भाई! अभी होने से भविष्य की प्रतीक्षा गई। अपने में होने से बाहर की तलाश गई। तथा मेरा अपना होने से प्यारे लगेंगे ही।'

यह सुनकर मुझे बड़ी शांति मिली एवं हृदय आनंद से भर गया। जिस परमात्मा को पाने के लिए निरंतर चिंतित रहते थे वह तो हमारे में ही है। पक्का आश्वासन मिल गया।

इसी सत्संग समारोह में हमारे आदरणीय मित्र श्री प्रहलादरायजी खेतान ने मुझसे कहा कि स्वामीजी महाराज तो सीधे छत की बात करते हैं - कहते हैं सीधे ही निर्मम और निष्काम हो जाओ, जो कैसे संभव है? मैंने स्वामीजी महाराज को उनकी यह बात बताई तो उन्होंने फरमाया -

'अरे भाई! मैं तो बिलकुल जमीन की बात करता हूँ। ममता और कामनाओं का त्याग किए बिना आदमी अटका ही रहेगा। साधन मार्ग में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पायेगा। अत: निर्मम, निष्काम होने की बात तो बिलकुल जमीन की बात है। इसलिए इस महामंत्र को अपनाना बहुत जरूरी है कि -

मेरा कुछ नहीं है,
मुझे कुछ नहीं चाहिए,
सर्व समर्थ प्रभु मेरे अपने हैं, और
सब कुछ उन्हीं का है।

इस महामंत्र को सुनने के बाद मेरी तो धारणा पक्की हो गई कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए इससे अधिक जानने को बाकी क्या रह गया?

अब तो महामंत्र को अपनाने की बात है, जिसकी जिम्मेदारी तो स्वयं अपने ही पर है।

- श्री दुर्गाप्रसाद राजगढ़िया
पुरुलिया (पं. बंगाल)

♦♦

या तो शरीर की भाँति सभी अपने हैं, अथवा सभी की भाँति शरीर भी अपना नहीं

- संतवाणी

केवल आनंदमय स्वतंत्र अस्तित्व

(27)

शबरी भोली-भाली महिता प्रभु की तलाश में बैठ जाती थीं। उनको भूख भी न लगे, नींद भी न आवे। वन में जाकर रोज ताजे-ताजे फलों को तोड़ना और चख-चखकर मीठे-मीठे रखना, इसमें इतना रस आ गया था कि शरीर धर्म उनका छूट ही गया। संध्या के समय दीपक जलाकर, चटाई बिछाकर, रास्ते झाड़कर, साफ करके दरवाजे पर बैठ जाती और बिलकुल ही अपलक नैनों से पंथ निहारती रहती - प्रभु आ रहे होंगे, प्रभु आ रहे होंगे। तो संध्या के समय बैठी थीं और सवेरा हो गया। रात कैसे बीत गई पता ही नहीं। क्या हो गया? शरीर-धर्म छूट गया और अलौकिक रस में उनका अहं समाहित हो गया।

अलौकिक तत्व जो है उसकी प्रीति हो जाने पर, उससे अभिन्नता हो जाने पर समय और स्थान की सीमा समाप्त हो जाती है। यह तो सीमित अहंभाव जब शरीरों के माध्यम से दृश्य जगत् की ओर आकर्षित होता है अर्थात् उसका संकल्प उसे भीतर स्फुरित होता है, तब काल और स्थान का ज्ञात होता है, उसकी सीमा बन जाती है। शबरीजी प्रभु की अखंड प्रतीक्षा में, अखंड़ स्मृति में इतनी विभोर हो जाती थीं कि शरीर का साथ ही छूट गया, उसके धर्म से वह ऊपर उठ गईं। तो न तो स्थान का पता, न काल का पता। सारी रात बीत गई, तो कैसे बीत गई, कुछ पता ही नहीं चला।

मुझे प्रत्यक्ष इस बात का अनुभव है कि **शरीर से असंगता होते ही दृष्टि और दृष्य दोनों से एकदम संबंध छूट जाता है। केवल एक आनन्दमय स्वतंत्र अस्तित्व रह जाता है।** न वहाँ स्थान है, न वहाँ काल है। लेकिन शरीर से संबंध जोड़कर जगत् को देखने का राग भीतर रह गया है, तो संकल्प उठते ही उसके साथ आदमी जुट जाता है। उसके संग जुटते ही सृष्टि से तादात्म्य जुटा नहीं कि दृश्य तुम्हारे सामने मौजूद हो गया। ऐसा होता है, इसमें कल्पना नहीं है। राग रह गया था तो फिर से संकल्प स्फुरण हुआ और मैंने दृश्य को देखा। परन्तु हमारा अस्तित्व जो है वह जगत् और शरीर से परे है।

- देवकी माताजी

♦♦

राम की मधुर स्मृति
(28)

एक बड़े ही योग्य साधक थे। जब तक उन्हें अपने गुणों का आश्रय रहा, तब तक वे राम से दूरी अनुभव करते रहे। पर जब उन्होंने अधीर होकर राम की आवश्यकता अनुभव की, कि मैं अपने प्रयास से अभी तक तुम्हें न पा सका। तो बस, करुणामय का दरवाजा खुला और वे राम के प्रेम में विभोर हो गए, वियोग नित्य-योग में बदल गया। उनका जीवन प्रेम और प्रेमास्पद की लीला स्थली बन गया। यह विश्वासी साधकों का अनुभव है।

शरीर के द्वारा सुख भोगने की रुचि और उसको बनाए रखने का संकल्प मेरे जानते भूल है। शरीर चाहे जैसा रहे, चाहे जहाँ रहे, चाहे जब तक रहे, उसकी यथाशक्ति सेवा करना है क्योंकि वह राम की अहैतुकी कृपा की देन है। **परन्तु निरन्तर राम की मधुर स्मृति, उनके प्रेम की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, इसीमें मानव जीवन की सार्थकता है।**

- संतवाणी

(जीवन दर्शन अंक 3 वर्ष 26 से साभार)

♦♦

सही प्रवृत्ति करने से विश्राम मिलता है। पर-आश्रय छोड़ने से हरि-आश्रय मिलता है

- संतवाणी

सेवा की प्रेरणा का स्त्रोत

(29)

कुछ दिनों पहले दीपावली के अवसर पर हम लोग वृन्दावन में थे। शहर में अन्यत्र, बहन विमला ठकारजी के द्वारा एक आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया था। उनसे स्वामीजी महाराज की अच्छी भेंट-मुलाकात थी। उनके जीवन पर स्वामीजी के दर्शन का अच्छा प्रभाव था। तो हम लोग उनसे मिलने के लिए गए कि मानव सेवा संघ के परिवार के साथ उनका मेलजोल हो, परस्पर विचार विनिमय हो। हमने इसके लिए उन्हें आश्रम में आमंत्रित किया।

तो बातचीत के बीच उन्होंने एक प्रसंग सुनाया कि सर्वोदय का अखिल भारतीय सम्मेलन हो रहा था। उस सम्मेलन की अध्यक्षता स्वामीजी महाराज कर रहे थे। उनके सामने सेवा की बहुत सी बातें चल रही थीं। तो स्वामीजी ने सर्वोदय के मित्रों से पूछा कि - आप कृपया यह बतायें कि सेवा प्रवृत्ति का प्रेरणा स्त्रोत क्या है? यह महाराजजी ने पूछा। सेवा की सामग्री में तो अन्न, वस्त्र, दवाइयाँ, पैसा, पुस्तकें आदि बहुत कुछ हैं। यह सब स्वामीजी ने नहीं पूछा। यह कहा कि - सेवा की प्रेरणा का स्त्रोत क्या है? विमला बहनजी बड़े प्रेम से हम लोगों को बता रही थीं कि कार्यकर्ताओं में से किसी ने गाँधीजी का नाम लिया, किसी ने विनोबाजी का या किसी ने जयप्रकाश नारायणजी का। किसी ने कुछ और किसी ने कुछ बताया। तो महाराजजी ने कहा - कि नहीं भाई! यह बात नहीं है। **सेवा की प्रेरणा का स्त्रोत है, मानव-हृदय की करुणा**। यह महाराजजी ने बताया।

तो मैं आप सत्संग-प्रेमी उपस्थित जनों की सेवा में निवेदन करती हूँ कि जिस हृदय में परपीड़ा से करुणा उमड़ती है, उसी के द्वारा सेवा बनती है। यह करुणा जो है वह प्रभु-प्रेम के समान ही अलौकिक तत्व है, जिसका कभी नाश नहीं होता। क्रिया तो सेवा का बाहरी रूप है। वास्तविक रूप तो है — पर-पीड़ा से उदित करुणा का भाव। **सुखी को देखकर प्रसन्न होना और दुःखी को देखकर करुणित होना — यह है सेवा की प्रेरणा का स्त्रोत।**

- देवकी माताजी

♦♦

तब तुम्हारी छुट्टी होती है
(30)

एक बहन एक दिन हमारे पास आईं और कहने लगीं कि दीदी! भक्तजनों के काम तो भगवान् आकर करते हैं। कल मैं सत्संग से पहले सो गई थी। नींद आ गई तो, तो सत्संग की जगह झाड़ू नहीं लगाया। तो भगवान ने तो मेरा काम किया ही नहीं। वह भोली-भाली महिला थी। उसने सुन रखा था कि भगवान् भक्तों के काज संभालते है। तो मैंने कहा कि - मेरी प्यारी बहन! तुम निद्रा की जड़ता में डूबोगी, तो भगवान् कोई नौकर हैं कि वे तुम्हारा काम करते फिरेंगे।

जो साधक ज्ञान की मस्ती में शरीर और संसार को भूल जाता है, उसके पीछे-पीछे दौड़ने में प्रेमास्पद को बड़ा आनन्द आता है। वे उसको सँभालते फिरते हैं। जो भक्त प्रभु के प्रेम में शरीर और संसार को भूल जाता है, उसकी दृष्टि में सृष्टि रहती ही नहीं है। वह शरीर धर्म से ऊपर उठ जाता है।

प्रेम तो अलौकिक तत्व है। भक्त की अलौकिक तत्व से अभिन्नता हो जाती है। प्रेम जैसे अलौकिक तत्व में जब साधक का अहं घुल जाता है, उसके शरीर की देखभाल और उसके सब काम को करने में परमात्मा को बड़ा आनन्द आता है। **तो तुम्हारी छुट्टी कब है?** जब तुम ज्ञान के प्रकाश में शरीर और संसार से ऊपर उठ जाओ या प्रेम की मस्ती में शरीर और संसार को भूल जाओ। फिर तुम पर कोई दायित्व नहीं है। प्रभु खुद करेंगे, सृष्टि करेगी, पशु-पक्षी करेंगे।

जीसस क्राइस्ट को मंत्र से दीक्षित किया गया, साधु बनाया गया। उसके बाद जब वे वहाँ से निकले, तो उनको ऐसा लगा कि अब मुझे परमात्मा का काम करना है। मैं परमात्मा से थोड़ी प्रार्थना कर लूँ, अपनी बात उनको सुना दूँ, तब काम शुरू करूँ। तो वे एक नदी के किनारे चले गए। ऊँचा सा पहाड़ था। पहाड़ के पत्थर का एक टुकड़ा बाहर निकला हुआ था। उसके नीचे जगह थी। छाया भी थी, एकांत भी था। वे जाकर उस जगह पर बैठ गए। बाइबिल में तो ऐसा लिखा है, कि चालीस दिन तक उनका ध्यान टूटा ही नहीं। दूर गाँव की बस्ती में से रोटी का छोटा-छोटा टुकड़ा पक्षी उठा कर ले आते और उनको खिला जाते। ऐसा होता है।

लेकिन तुम यह सोचो कि उनका दिया हुआ सामर्थ्य भी तुम्हारे पास है और शरीर व संसार से उपराम भी तुम नहीं हुए। असंग भी तुम नहीं हुए, प्रेम से सराबोर भी तुम नहीं हुए। फिर कहो कि भगवान् झाड़ू लगा देंगे, ताला बंद कर देंगे, भगवान् रक्षा कर देंगे, भगवान् रसोई बना देंगे आदि, तो यह भ्रम है।

समर्पण का भाव तो सैन्ट-पर-सैन्ट होता है, सम्पूर्ण होता है तब तुम्हारी छुट्टी होती है।

- देवकी माताजी

(जीवन-दर्शन वर्ष 27 अंक 6 से साभार)

♦♦

प्रत्येक कार्य के आदि और अंत में विश्राम स्वाभाविक है। विश्राम अभ्यास नहीं है, किसी का चिंतन तथा ध्यान भी नहीं है, अपितु विश्राम से ही सार्थक चिंतन उत्पन्न होकर अचिन्तता में विलीन होता है। विश्राम से ही प्रीति उदित होकर अपने प्रीतम से अभिन्न होती है। विश्राम से ही विचार का उदय होता है जो अविचार को खाकर स्वतः साधक को तत्व से अभेद कर देता है।

- संतवाणी

देवी! न मालूम कब संध्या हो जाए?
(31)

'लाइट ऑफ एशिया' एक ग्रंथ है। उसमें मैंने पढ़ा - राजकुमार सिद्धार्थ दु:ख निवृत्ति का प्रश्न लेकर युवावस्था में संन्यासी हो गए। एक नगर से होकर जा रहे थे। करुणा से पूरित बहुत धीरे-धीरे जमीन पर पाँव रखते थे। बहुत सुंदर वर्णन है उनके जीवन का। 'हाउ सॉफ्टली ही लुक्स'।

बहुत मधुर दृष्टि से सृष्टि को देखना और बहुत कोमल-कोमल चरणों से धीरे-धीरे धरती पर पाँव रखना कि जिसमें किसी प्राणी को किसी भी प्रकार कष्ट न पहुँचे - ऐसे संत एक नगर से जा रहे हैं, युवावस्था है। राजवंशी राजकुमार अत्यंत रूपवान शरीर, स्वस्थ-सुडौल शरीर और सन्यासी वेश।

मुख-मंडल पर परम शांति है। दृष्टि में अत्यंत प्रीति है। हृदय करुणा से परिपूरित है और चलने की गति में कोमलता है। ऐसा एक युवा सन्यासी नगर से होकर जा रहा है। तो दूर से स्त्रियों ने देखा, झरोखे पर बैठी हुईं, दरवाजे पर खड़ी हुईं स्त्रियों ने देखा तो उनको कौतुहल हुआ कि ऐसा रूपवान, राजवंशी राजकुमार और युवावस्था - यह कैसे सन्यासी हो गया?

किसी ने व्यंग्य से प्रश्न किया - 'बाबा! बड़े सवेरे जल्दी निकल पड़े बाबा! क्या बात है?'

उन सन्यासी ने दृष्टि नीचे की ओर किए हुए, यह अनुमान लगाते हुए कि यह स्त्री-कंठ की ध्वनि है जो ऊपर से आ रही है - दोनों हाथों को जोड़ते हुए ऊपर उठाकर प्रणाम किया और सिर नीचे झुकाकर अत्यंत कोमल वाणी में बड़ी नम्रता के स्वर में उन युवा सन्यासी ने कहा - **'देवी! न मालूम कब संध्या हो जाए?'**

प्रश्न किया गया - बाबा, बड़े सवेरे, क्या बात है - इतनी जल्दी निकल पड़े। तो उत्तर मिला कि **देवी! न मालूम कब संध्या हो जाए?** सूर्योदय और सूर्यास्त की घड़ियाँ तो गिनी हुई नहीं हैं। कब सवेरा और कब शाम हो जायेगी कोई जानता ही नहीं है।

ऐसा ही मैं अपने भाई-बहिनों को याद दिला रही हूँ कि हम लोगों को कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करने का सामर्थ्य जब मिले तो अपने जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण बनाकर प्रवेश करो कि हम इसमें प्रवेश तो कर रहे हैं, परन्तु परिश्रमपूर्वक उपार्जन करेंगे, उदारतापूर्वक वितरण करेंगे, मर्यादापूर्वक शरीर को संभालेंगे और ये सारी साधनाओं से परे शरीर की शक्ति घटने से पहले अविनाशी की परम शांति में आनन्दित हो जायेंगे। अविनाशी के नित्य योग में अमर हो जायेंगे - अविनाशी के परम-प्रेम से सराबोर हो जायेंगे। यह परम विश्राम का मार्ग है।

- देवकी माताजी

(जीवन दर्शन वर्ष 28 अंक 11 से साभार)

♦♦

गोस्वामीजी ने लिखा है, ''भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।'' जिसके संकल्प मात्र से सारी सृष्टि भस्म हो सकती है, उसको रावण और कंस को मारने के लिए अवतार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता थी? लेकिन क्यों आए? इसलिए कि शबरी मय्या के झूठे बेर कैसे खायेंगे? वहाँ तो भृकुटि विलास से काम नहीं चल सकता है। वह स्वाद शासक बनने से नहीं आ सकता है। विदुरानीजी (विदुरजी की स्त्री) के केले के छिलके में जो मजा आया, वहाँ गोलोक-साकेत में बैठे-बैठे मृत्यु का चक्र चला करके रावण, कंस को मारने में वह मजा कैसे आता?

- संतवाणी

तुम्हारे प्यारे ने छात्राओं का वेश बनाया है
(32)

मैं जब सत्संग में श्री स्वामीजी महाराज के पास आने लगी और सत्-चर्चा बहुत अच्छी लगने लगी, तो मुझे भय हुआ कि महाविद्यालय में पढ़ाने का काम करने से मैं सत्संग की बातें भूल जाऊँगी, साधना से भटक जाऊँगी। तो मैंने उनसे निवेदन किया कि महाराज! आज्ञा दीजिए तो मैं त्यागपत्र भेज दूँ और पूरे समय सत्संग में रहूँ। तो श्री महाराजजी ने बहुत बढ़िया उत्तर दिया - ''लाली! संग्रह किया है तुमने तो बाँटेगा कौन? मैं क्यों कहूँ कि नौकरी छोड़ दो? जिस दिन तुम साइकोलोजी पढ़ाते-पढ़ाते प्रभु-प्रेम पढ़ाने लग जाओगी, उस दिन यूनिवर्सिटी खुद ही विदा कर देगी कि जाओ, अब तुम हमारे काम की नहीं रही। उस दिन छोड़ देना।''

दूसरी बात उन्होंने बड़े ही रहस्य की बताई। उन्होंने कहा कि देखो भाई! यह जो ज्ञान की साधना है, भक्ति की साधना है, इसको किसी परिस्थिति के साथ मत जोड़ो, किसी विशेष प्रवृत्ति के साथ मत जोड़ो। **अगर हर प्रवृत्ति प्रभु की पूजा नहीं हुई तो तुम्हारे जीवन से निरन्तर पूजा नहीं बनेगी। हर प्रवृत्ति प्रभु की पूजा होनी चाहिए। यह नहीं कि गीता भवन में बैठकर वट-वृक्ष के नीचे भगवान् की चर्चा सुनना तो साधना है और विद्यार्थियों को पढ़ाना साधना नहीं है। ऐसे कभी भी साधना अखंड नहीं होगी तुम्हारे जीवन में।** शरीर तो संसार में रहेगा ही। एक शरीर को अन्य शरीरों के साथ सहयोग लेने और देने का व्यवहार तो रखना ही होगा। उससे अपने को बचाया नहीं जा सकता। अपने को बचाने से साधना बहुत कठिन बन जाती है, भार बन जाती है। उन्होंने मुझको यह विधि सिखाई कि जब तुम जाओ कक्षा भवन में, तो प्रवेश करने के बाद विद्यार्थियों को मन ही मन प्रणाम करो। **इस भाव से प्रणाम करो कि - तुम्हारे प्रभु के अतिरिक्त और किसी की सत्ता ही नहीं है।**

तुममें लैक्चरर होने का राग था, तो उस राग-निवृति के लिए ही तुम्हारे प्यारे ने छात्राओं का वेष बनाया है। इस वेष में तुम उनका आदर करो, भीतर-भीतर

उनको प्रणाम करो। जो कुछ तुम्हें आता है, पत्र-पुष्प के रूप में उनको अर्पित करके उनकी पूजा करो।

छात्राओं को इतनी पवित्रता से पढ़ाना कि जितनी पवित्रता से भगवान् की पूजा करती हो, तो वह प्रवृत्ति तुम्हारी साधन रूपा हो जाएगी और सदा के लिए तुम राग-मुक्त भी हो जाओगी। और अपने में यह अभिमान भी नहीं आएगा कि मैंने साधना के लिए बड़ा भारी त्याग किया। **त्याग करने का संकल्प लेकर तुम नौकरी छोड़ोगी, तो तुम्हारे भीतर अभिमान रह जाएगा कि मैंने साधना के लिए, सत्संग के लिए बड़ा भारी त्याग किया है। नौकरी बड़ी बाधा नहीं है। लेकिन अभिमान तुमको परमात्मा से दूर रखेगा।** त्याग का तो आभास भी नहीं होना चाहिए। इसलिए तुम संकल्प बनाकर नौकरी मत छोड़ो। हर प्रवृत्ति को प्रभु की पूजा का रूप देने की चेष्टा करो। तब तुम्हारे भीतर राग नहीं रहेगा।

- देवकी माताजी

(जीवन दर्शन वर्ष 27 अंक 3 से साभार)

♦♦

अचाह रूपी भूमि में ही मूक-सत्संग रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है और संबंध-विच्छेद रूपी जल से उसे सींचा जाता है। वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग ही उस वृक्ष की रक्षा करने वाली बाड़ है। उनकी मधुर-स्मृति उस वृक्ष का बौर है और अमरत्व ही उस वृक्ष का फल है, जिसमें प्रेमरूपी रस भरपूर है। प्रेमरस से भरपूर अमर फल पाकर ही प्राणी कृतकृत्य होता है

- संतवाणी

रस-तत्व

(33)

युद्ध क्षेत्र में एक सिपाही की घटना है कि युद्ध में उसके गोली लगी। वह गिर पड़ा और पुकारा - पानी! एक और सिपाही उसके पास घायलावस्था में पड़ा कराह रहा था। इसके पास जब पानी भरा पात्र लाया गया तो इस मरणासन्न व्यक्ति ने पेट के बल खिसक कर जलपात्र हाथ में लेकर कराहते हुए सिपाही के मुख में लगा दिया और उसे पिला दिया। आप सोचिए कि जिसके भीतर पीड़ित की पीड़ा समा गई, उसको अपनी मृत्यु का भय नहीं रहा। देखा कि बगल वाला भी प्यास से तड़प रहा है तो वह अपनी पीड़ा भूल गया, जल उसे पिला दिया और स्वयं बिना पीये मर गया। उसकी शांति देखो! अपनी प्यास को भूल गया वह मरणासन्न भला आदमी। जरा सोचो। नाशवान् तो नाश हो गया। लेकिन जिसने अंतिम समय पर भी अपने प्राणों की परवाह न करके उस पीड़ित के मुख से जल लगा दिया, उसके भीतर जो सरसता आई होगी, वह शरीर के नाश से भी मिटी नहीं होगी। जरा उसकी कल्पना करो।

हम लोग अटके हुए हैं। नीरसता के कारण असत् का त्याग करना कठिन हो गया, सत्य को स्वीकार करना कठिन हो गया, कर्त्तव्य का पालन करना कठिन हो गया, कुटुम्बीजनों के प्रति अपने दायित्व को पूरा करना कठिन हो गया। न हम दुनियाँ के लायक रहे, न दुनियाँ के पार जाने का सामर्थ्य रहा और **न प्रभु के प्रेमी होने के लायक रहे। उस नीरसता का नाश करने के लिए हम सब सत्संगी भाई-बहिनों को आज से ही, अभी से ही पूरी चेष्टा करनी चाहिए।** महाराजजी कहते हैं कि देखो! मनुष्य के जीवन में उदारता का रस होता है। उदार बने रहोगे, तो रस घटेगा नहीं। रस घटेगा नहीं, तो मनुष्य बने रहोगे। रस घट जाता है, तो नीरसता से मनुष्य महा हिंसक हो जाता है, क्रूर हो जाता है, जो नहीं करना चाहिए सो कर बैठता है। इसलिए रस-तत्व पर ध्यान देना हम लोगों के लिए जरूरी है।

एक उदारता का रस होता है, एक निष्कामता का रस होता है, एक ममता रहित होने का रस होता है। आप उदार हो गए, अचाह हो गए, निर्मम

हो गए तो आपको परम शांति मिलेगी। शांति में भी बड़ा रस है। उससे भी आगे बढ़ेंगे तो परम स्वाधीन हो जायेंगे, शरीरों की गुलामी खत्म हो जाएगी, संसार की पराधीनता मिट जाएगी, जन्म मरण की बाध्यता खत्म हो जाएगी। उस स्वाधीनता में भी बड़ा रस है। आगे चलकर प्रभु के प्रेमी हो जायेंगे, तो भक्ति के रस की तो बात ही निराली है। वही रस हम लोगों को लक्ष्य के रूप में रखना चाहिए। वहाँ तक अपने को पहुँचना है। ऐसा श्री महाराजजी ने एक क्रम बताया।

- देवकी माताजी

(जीवन दर्शन वर्ष 26 अंक 10 से साभार)

♦♦

भौतिकता की पूर्णता में आध्यात्मिकता एवं आध्यात्मिकता की पूर्णता में परम-प्रेम स्वतः अभिव्यक्त होता है। कर्तव्यनिष्ठ जगत् के लिए और विवेकी अपने लिए तथा विश्वासी प्रभु के लिए उपयोगी होता है— यह मानव जीवन की विलक्षणता है

- संतवाणी

तो हमने मनुष्य होकर क्या किया?

(34)

मुझको संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य मालूम होता है, मेरा यह ''अहं''। आश्चर्यजनक रचना इस ''अहं'' की है। मनुष्य का यही ''मैं-पन'' है। यह ''अहं'' संसार के तत्वों से बने हुए शरीर को लेकर इस धरती पर विचरण करते हुए अनन्त, अविनाशी जीवन के आनंद का अनुभव कर सकता है। यह अनंत ऐश्वर्यवान्, अनंत माधुर्यवान् परमात्मा का प्रेमी होकर उनके साथ प्रेम का आदान-प्रदान कर प्रेमालाप भी कर सकता है। उनकी लीला में भाग ले सकता है। अपने प्रेम रस से उनको आनन्दित कर सकता है। उनके प्रेम रस से स्वयं आनन्दित हो सकता है। अनन्त प्रेम सागर में डुबकी लगाकर नित नव रस का आनन्द ले सकता है।

महाराजजी कहते, देवकीजी! इस भौतिक जगत् के विस्तार की सीमा इतनी बड़ी है कि मनुष्य सब जान नहीं सकता। रिसर्च करने वाले करते रहते हैं, उपाधियाँ लोग देते रहते हैं, ताली बजाने वाले ताली बजाते रहते हैं। पर भौतिक जगत् की सीमा इतनी अधिक है कि उसका पता नहीं चलता। लेकिन तुम्हारे भीतर अलौकिक तत्व जो ''अहं'' विद्यमान है, वह तो सारे संसार से बड़ा व्यापक है भाई। इसमें सत्य की आवश्यकता जागृत हुई, तो जीवन का अंधकार मिटा। ईश्वर का सहारा लिया आपने और वे प्रकट हुए। आप जिस नाम से पुकारेंगे, वे उत्तर दे देंगे। जिस भाव से मानेंगे, वे पार लगा देंगे। जो आपकी अभिलाषा होगी, उसको पूरी करने में वे अपने को न्यौछावर कर देंगे।

संत कबीर ने कहा है -

मन ऐसा निर्मल भया, जैसा गंगा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरें, कहत कबीर-कबीर॥

यह शुद्ध अहं का ही चमत्कार है। ऐसे अलौकिक जीवन का अनुभव नहीं किया, तो हमने मनुष्य होकर क्या किया?

- देवकी माताजी

◆◆

तुम इस पर दृढ़ रहो कि .....
(35)

सन् 1974 में पुरुलिया के भाई मनोहरलालजी साह वृन्दावन से आये तब मुझसे कहा कि स्वामीजी आपको बहुत याद करते थे। मेरे मन में भी स्वामीजी से मिलने की लालसा तीव्र हो उठी। उसी समय मैं श्री दुर्गा पूजा की बिक्री के लिए कपड़ा खरीदने बम्बई गया था। वहाँ पर जाकर विचार किया कि पुरुलिया जाकर तो वृन्दावन जाना हो सकेगा नहीं - यहीं से चला चलूँ और Delux ट्रेन में चेयर-कार में मथुरा होता हुआ वृन्दावन आश्रम में पहुँच गया। वहाँ पू. दादाजी हनुमन्त सिंह जी ने मेरा सामान एक बड़े से कमरे में रखवा दिया जिसमें सब सुविधायें थीं।

दिन के करीब दस बजे थे - मैंने दादाजी से पूछा कि पू. स्वामीजी के दर्शन हो जायेंगे क्या?

''अभी शायद सो रहे हैं - चलिए देख लेते हैं।''

मैंने कहा शाम को सत्संग के समय मिल लूंगा। बोले - ''नहीं आप इतनी दूर से आये हैं, चलिए देख लेते हैं शायद न सोये हों।''

हम लोग सन्त कुटी की ओर चल दिये। हमें देखते ही ''पापा'' बाहर आये। दादाजी ने पूछा - ''स्वामीजी सो गये क्या?''

पापा - ''हाँ''

दादाजी - ''नींद आ गई क्या? दुर्गाप्रसाद आये हैं, मिल लेते।''

इतने में भीतर से स्वामीजी महाराज की आवाज आई - कौन? हम लोग काफी दूर पर थे एवं बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। मुझे नहीं लगा स्वामीजी सुन पाये होंगे। किन्तु स्वामीजी की सजगता!

खैर, हम लोग भीतर चले गये। दादाजी ने कहा - पुरुलिया से दुर्गाप्रसाद आये हैं। ओह! सुनते ही मानो स्वामीजी को करेन्ट सा लगा हो। हड़बड़ा कर उठकर बैठ गये और बाहें फैला दी। ''आओ! आओ! यार! आओ। तुम कैसे आ

गये तुम तो कभी आते ही नहीं।'' मैं भाव विह्वल होकर उनकी गोद में गिर गया और स्वामीजी मेरे सिर पर और सारे शरीर पर हाथ फेरने लगे। मानों कितने वर्षों का बिछुड़ा कोई नितान्त ही प्रिय बेटा मिल गया हो। ऐसा था स्वामीजी का स्नेह और प्यार। मैंने कहा स्वामीजी आपने मनोहर भाई से कहलाया था कि दुर्गाप्रसाद आता नहीं है। बोले – हाँ, मैंने कहा था कि अब इस शरीर का तो कोई भरोसा नहीं है, कितने दिन रहेगा, इसलिए दुर्गाप्रसाद से कह देना – साधन सम्बन्धी, जीवन सम्बन्धी कोई भी प्रश्न हो तो आ जायेगा, कर लेगा।

फिर पूछने लगे कौन सी गाड़ी से आये हो, कहाँ ठहरे हो? दादाजी ने बताया- अमुक कमरे में ठहराया है। कहने लगे – अरे यार वहाँ तो पानी नहीं है, तुम कष्ट पाओगे। मैंने कहा – स्वामीजी सामने ही चापाकल है, वहाँ से पानी ले लूँगा। किन्तु नहीं माने एवं दादाजी से कहा – इसे नोपानीजी वाली कोठी में ठहरा दीजिये।

मैंने उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछा तो बोले वह सब बातें बाद में होंगी। पहले नहाओ, नाश्ता करो, भोजन बनने पर भोजन कर लेना और सायंकाल सत्संग में आना।

मेरा विचार 3-4 दिन वहाँ ठहरने का था किन्तु स्वामीजी का स्नेह और प्यार तथा आग्रह देख कर आठ दिन रहा। मेरा कितना ध्यान रखते थे – भोजन किया कि नहीं, भोजन अच्छा लगा कि नहीं, पेट भरा कि नहीं। ट्रेन में ए.सी. क्लास की ठंड के कारण मेरे दाँत में दर्द हो गया था। सुनकर अधीर हो गये। बहिन साध्वीजी से बार-बार कह कर दांत में दवा लगवाई और दाँत में दर्द के कारण खाने में दूध रोटी दी। मैंने दूध में चूरकर रोटी खाई। बार-बार पूछते थे दांत का दर्द कैसा है? क्या खाओगे?

एक दिन मैंने पूछा – स्वामीजी आपकी बातें सुन-सुन कर उन पर विचार करके यह तो अच्छी तरह समझ में आ गया कि संसार में मेरा कुछ नहीं है, किन्तु फिर भी जब अनुकूल परिस्थिति आती है, जैसे कि कोई अच्छे नफेवाला माल मिल गया या किसी पार्टी से डूबा हुआ रुपया वापस मिल गया तो, प्रसन्नता होती है और यदि नुकसान होता है तो दु:ख होता है ऐसा क्यों?

बोले – अरे यह तो Emotional है। यह तो होगा। तुम इसकी चिन्ता मत करो। तुम दृढ़ रहो।

''मैं किस पर दृढ़ रहूँ''

''तुम इस पर दृढ़ रहो कि मेरा कुछ नहीं है।''

जब मैं वहाँ से रवाना होने लगा तो प्रात: कालीन 4.00 बजे के सत्संग में शामिल हुआ। स्वामीजी ने प्रवचन में कहा कि **''दृश्य का आकर्षण न हो - प्रियतम की विस्मृति न हो।''**

जब प्रात: 8.00 बजे रवाना होने से पहले मैं पुन: मिला तो बोले -

''आज प्रात:कालीन सत्संग में आये थे?''

''जी महाराज''

''सत्संग सुना - समझ में आया''

''जी''

''देखो भाई आज का सत्संग तुम्हारे लिए था।''

''हैं! मेरे लिए पूरा एक प्रवचन''

''हाँ - तुम आज जा रहे हो ना - तो हमारे पास और कुछ तो देने के लिए है नहीं - जो था वह हमने तुमको दे दिया।'' मैं तो निहाल हो गया।

फिर रास्ते में क्या खाओगे आदि बातें पूछ कर पूरे दो दिनों तक खाने के लिए आदरणीय बहिन साध्वीजी से कहकर नौपहली पूड़ी (परौठें) बनवा कर दिये (क्यों कि दांत में दर्द था न) आलू उबलवा कर दिये, नमक मिर्च दिये, अचार देने लगे तो मैंने कहा पास घर का आचार है। पूरी तरह से समझा बुझा कर सन्तुष्ट करके और सन्तुष्ट होकर मुझे विदा किया।

उपरोक्त घटना वर्ष 1974 की है। उसी वर्ष 25 दिसम्बर, गीता जयंति, मोक्षदा एकादशी व ईसा जयंति के दिन स्वामीजी महाराज ने अपनी इहलीला का संवरण किया। यह घटना, क्या, यह समझने के लिए पर्याप्त नहीं है कि करुणापूरित संत (ऋषि) भटकते हुए मुझ जैसे संसारजनों को अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा किस प्रकार जीवन की राह दिखाते हुए साधन मार्ग पर अग्रसर करते हैं, सही दिशा प्रदान करते है एवं उनका कल्याण करते हैं। हमें तो पता भी नहीं चलता।

- दुर्गाप्रसाद राजगढ़िया
पुरुलिया (प. बंगाल)

♦♦

प्राणों की आहुती कहाँ दी?

(36)

एक दिन मैं महात्मा ईसा की कथा सुना रही थी। जो भगवद्भक्त हैं, हमको बहुत प्यारे लगते हैं, क्योंकि मेरे प्यारे को प्यार किया उन्होंने। मीरांजी की याद आती है तो मेरे हृदय में बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि मेरे ठाकुर को प्यार किया उन्होंने। तो एक दिन ऐसे ही एक साधक ने कहा कि ईसा इतने बड़े प्रेमी थे भगवान् के, तो उनको फाँसी पर क्यों चढ़ना पड़ा?

मैंने कहा कि - स्वामीजी महाराज के श्रीमुख से सुना है कि जब उनके साथ के लोग भगवान् के प्रेम की बात नहीं सुन रहे थे, उनका विरोध कर रहे थे, तो महात्मा ईसा एक दिन अकेले जंगल में वृक्षों के झुरमुट में जाकर बैठ गए और भगवान् से बातें करने लगे। प्रेमीजन तो अकेले में सीधे उनसे बातचीत कर सकते हैं, तो उन्होंने कहा - हे पिता! तेरा काम तो मैं करुँगा, करना चाहता हूँ, लोगों को कितनी सच्ची बात तेरे बारे में सुनाता हूँ। लेकिन पता नहीं, क्यों लोग सुनते ही नहीं?

तो उन्हें परमात्मा का उत्तर मिला कि अरे पुत्र! मेरे कार्य के लिए, अभी तूने अपने प्राणों की आहुती कहाँ दी? ऐसा उनको भगवान् ने कहा। यह बात बहुत ही सच्ची है। मैं कहती हूँ कि **हम लोगों का शरीर जो है, वह बीमार होकर के, बिस्तर में पड़े रह करके, दूसरों की दया का पात्र बनकरके आखिर में खत्म तो होगा ही। अत: इसकी आहुती देने के लिए हम लोगों को भी तैयार रहना चाहिए।**

- देवकी माताजी

♦♦

चैन से रहना चाहते हो तो काम को जमा मत रखो

सोचो!

(37)

देखो! जीवन शब्द का अर्थ भी परमात्मा ही है। जीवन माने क्या? जिसका नाश न हो। जीवन माने क्या? जिसमें चेतना हो। जीवन माने क्या? जो रसरूप हो।

परमात्मा किसे कहते हैं? जो सत् हो, चित् हो, आनंद हो। तो जो परमात्मा शब्द का अर्थ है वही जीवन शब्द का अर्थ है। ऐसी बात है। इसलिए हम सबको जीवन मिल सकता है।

एक बार मैं जे. कृष्णमूर्त्तिजी से बात कर रहा था। दिल्ली में ठहरे हुए थे वे। वे अंग्रेजी जानते थे, मैं हिन्दी जानता था और पंडित रामेश्वरदयाल जो डिप्टी कमिश्नर थे, वे अनुवाद करते जाते थे। कृष्णमूर्त्तिजी निषेधात्मक चर्चा करते हैं। उनका सिद्धांत है - यह नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। स्वीकृति हटाते हैं, उसे मिटाते हैं। तो मैंने उनसे कहा कि आप स्वीकृति को मिटाते चले जाते हैं तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप अभाव को पसन्द करते हैं?

बोले - नहीं! नहीं!! नहीं!!! अभाव नहीं है। लाइफ है लाइफ।

तो हमने कहा भैय्या! आपने जिसको 'लाइफ' कहकर स्वीकार किया अगर मैं उसको 'भगवान्' करके स्वीकार करूँ, तो आपको क्यों आपत्ति होती है? इस बात पर वे चुप हो गए, आगे बोले नहीं।

तो भगवान् के खिलाफ जो आवाज उठती है न, वह तर्क से नहीं उठती है। वह आवाज उठती है भगवान् के मानने वालों के दुश्चरित्र से, और कोई बात नहीं है। **भगवान् का मानने वाला अगर ठीक आदमी हो तो भगवान् के खिलाफ कोई बोल ही नहीं सकता। ऐसे ही सत्य को मानने वाला ठीक आदमी हो तो सत्य के खिलाफ कोई बोल ही नहीं सकता। ऐसे ही जीवन को मानने वाला ठीक आदमी हो तो जीवन के खिलाफ कोई बोल ही नहीं सकता, ऐसा मेरा मानना है।**

यह बात समझ में आती है? सोचो!

- संतवाणी

♦♦

पूज्य स्वामीजी महाराज की अनमोल यादें
(38)

डिग्गी हाउस जयपुर में महाराज जी ठहरे थे। बड़ी चौपड़ पर गौ-सेवा के बारे में, सभा के लिए अध्यक्षता का निमन्त्रण देने एक सज्जन कुछ मित्रों के साथ स्वामीजी के पास आये थे। स्वामीजी ने कहा, "मैं तो अपने ढंग से गौ-सेवा कर ही रहा हूँ। आप लोग अपने तरीके से करिये।" इस बात को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी क्या गौ-सेवा करते हैं? इनके पास न तो गाय है और न कोई गौ-सेवा का कार्यक्रम।

आगे चलकर बहुत दिन बाद मुझे मालूम हुआ कि महाराजजी के भोजन में दूध, दही, छाछ, मक्खन आदि सब वस्तुएँ केवल गाय के दूध की काम में ली जाती हैं। मेरी समझ में आ गया कि गाय को घर में, समाज में उपयोगी बनाया जाय, तभी गाय की सच्ची सेवा होगी। माल खिलाएं भैंस को, तिलक करें गाय को, तो गाय नहीं बच सकती।

कुछ समय बाद स्वामीजी जब पुनः जयपुर पधारे, तो मैंने राजापार्क के मकान में उन्हें भोजन का निमंत्रण दिया। मेरे घर पर उन दिनों बकरी थी। स्वामीजी मकान में घुसे तो बकरी की आवाज सुनी। मैंने बताया कि महाराज! यहाँ शरणार्थी बस्ती बस रही है। दूध की सुविधा के लिए बकरी रखता हूँ। महाराज जी बोले - "कोई बात नहीं, **कृष्ण न सही-मोहम्मद ही सही।**" इन शब्दों को सुनकर मेरे ऊपर प्रभाव हुआ और मैं घर में गाय ले आया। जब तक महाराजजी का शरीर रहा, गाय घर में रही और इस प्रकार गाय की सेवा हमारे द्वारा तथा हमारी सेवा गाय के द्वारा होती रही। यह सन् 74 की बात है। आपको आश्चर्य होगा कि महाराज जी के सन् 74 में शरीर छोड़ने के बाद, गाय की सेवा बन्द हो गयी। पूरी कोशिश करने पर भी घर में गाय नहीं आ सकी। गाय आयी थी, क्या केवल श्री महाराज जी के संकल्प से? यह प्रश्न अभी तक खड़ा है।

एक बार रामनिवास-बाग जयपुर के अलवर्ट हाल में, सत्संग प्रोग्राम चल

रहा था। समाप्ति पर एक सज्जन उठे और बोले - 'मैं रेलवे में नौकरी करता हूँ। स्टॉफ के अन्य लोगों की तरह बिना टिकिट सफर करता हूँ। मैं यह समझ रहा था कि रेलवे का मुलाजिम हूँ, इसलिए बिना टिकिट सफर करना कोई गलत काम नहीं है। आज सत्संग में आपकी बातें सुनीं, तो ऐसी प्रेरणा हो रही है कि पास भी नहीं बनवाया, टिकट भी नहीं लिया, इसमें जरूर कहीं कोई गलती हो रही है।' उसने पूछा ''महाराज जी, मुझे करना चाहिए?''

महाराजजी ने तत्काल जवाब दिया - ''रेलवे स्टेशन जाओ और जहाँ तक का सफर किया है, उस स्टेशन का टिकिट खरीदो। टिकिट को फाड़कर फेंक दो और घर आ जाओ।''

इस बातचीत के समय जो लोग वहाँ मौजूद थे, बेईमानी का यह इलाज सुनकर आश्चर्य चकित हो गये। मैं भी विचार में डूब गया। जीवन का अर्थ समझने में मुझे स्वामी जी की यह बात, बार-बार याद आती है। इस घटना का अपने जीवन में बहुत बार लाभ उठाया है।

अब सुनिये मेरी दुकान की घटना। दुकान पर कई आदमी काम करते थे। एक आदमी गल्ले (कैशबक्स) में से चोरी करता था। मैंने बहुत समझाया, पर नहीं माना। मेरी चिन्ता बढ़ती गयी।

स्वामीजी महाराज प्रेम निकेतन आश्रम, दुर्गापुरा जयपुर में उन दिनों ठहरे थे। आश्रम में प्रात: सत्संग के बाद महाराजजी भ्रमण (सैर) को निकले। मैं भी साथ हो लिया। रास्ते में अपनी चिन्ता उनके सामने रखी। महाराज जी ने पूछा - ''रामकिशन, तुमको दुकान में घाटा तो नहीं लगता?'' मैंने कहा - महाराजजी! आपके आशीर्वाद से घाटा तो नहीं है। महाराज जी ने कहा - ''तो चोरी करने वाले की चिन्ता तुम छोड़ दो और चलते चलो।'' महाराजजी की सलाह मैंने सुन ली। मुझे शांति मिल गयी और उस आदमी की चिन्ता छोड़ दी। अब सुनिये हैरानी की बात और स्वामीजी की बात का रिजल्ट।

इस घटना को एक महीना भी नहीं बीता था कि वह नौकर स्वयं मेरे पास आकर बोला - ''भाई साहब! आपने मुझे कितनी छूट दी? कितना समझाया, फिर भी मैं अपनी चोरी की आदत नहीं छोड़ सका। मैंने लाख कोशिश की, अपने पर काबू नहीं पा सका। अब आप मुझे नौकरी से अलहदा कर दीजिए। मैं आपके पास रहने लायक नहीं हूँ।''

बहुत समझाने-बुझाने के बाद उसे छुट्टी दे दी गयी। आज भी हम दोनों सद्भावपूर्वक मिलते रहते हैं। सम्पर्क कायम है। भाइयों की तरह एक दूसरे से मिलते हैं।

पूज्य स्वामीजी महाराज के संस्मरण पूरे करने के बाद एक और घटना याद आ रही है। जयपुर में सत्संग की बैठक के बाद एक सज्जन बोले - महाराज! मैं बीड़ी-सिगरेट छोड़ना चाहता हूँ, पर छूटती नहीं है। क्या करूँ?

महाराजजी ने तुरन्त उत्तर दिया -

''बीड़ी-सिगरेट मत छोड़ो, पर इसकी स्वीकृति छोड़ दो।'' इस उत्तर का मेरे ऊपर यह प्रभाव पड़ा कि हम लोगों के जीवन में जो भी बुरी आदतें पड़ गयी हैं और जिन्हें हम छोड़ने की कोशिश भी करते हैं, और वे छूटती नहीं, तो निराश हो जाते हैं। इसका इलाज यही है कि ''हमारी स्वीकृति के कारण ही इनका हमारे ऊपर शासन हो रहा है।'' इसलिए स्वीकृति छोड़ना जरूरी है।

- रामकृष्ण छाबड़ा

(जीवन दर्शन - जुलाई 1994 अंक से साभार)

♦♦

संसार की सेवा का अर्थ है, संसार से मिली हुई वस्तुएँ संसार को भेंट कर देना अथवा यों कहो कि ईमानदार हो जाना, जो वास्तव में मानवता है

- संतवाणी

क्योंकि राम चाहते हैं
(39)

आपने सुना होगा भगवान् राघवेन्द्र के जो परिकर हैं, जो उनके भक्त हैं उनमें एक कैकेयी भी हैं। आप यह सुनकर चौंक उठेंगे कि अरे! वह क्या उनकी भक्त होंगी कि जिन्होंने उन्हें वन भेज दिया? लेकिन एक बात तो सोचिए! भगवान् राम के चरित्र में से वन का भाग यदि निकाल दिया जाय तो भगवान् शबरी के बेर खा सकते हैं क्या? और कोल-भीलों के कन्द-मूल-फल खा सकते हैं क्या? ऋषि-मुनियों के आश्रम में जाकर दर्शन दे सकते हैं क्या? देवताओं का काम कर सकते हैं क्या?

भगवान् राम के चरित्र में जो कुछ महत्व है वह वनवासी राम का है या राजा राम का? अच्छा! कैकेयी को निकला दिया जाए राम के वात्सल्य में से, तो राम वन जा सकते हैं क्या?

आप लोग सोचते होंगे कि कैकेयी ने बड़ी भूल की जो राम को वन भेजा। भूल नहीं की महाराज! राम के मन की बात पूरी की, अपने को कलंकित करके। अब आप सोचिए कि भक्तिरस कैसा है! राम ने स्वयं कैकेयी से कहा - माँ! तुम मुझे वन में भेज दो। कैकेयी बड़ी हिचकिचाईं। कहने लगीं -'राम, ये क्या चाहते हो? प्यारे राम! मैं वन तो भेज दूंगी। तुम जब चाहते हो तो मैं कलंक सहूँगी, अपमान सहूँगी। क्यों? तुम्हारे मन की बात पूरी हो, इसलिए। परन्तु तुम चलते समय वन जाते समय, सुमित्रा जी से मत मिलना।'

सुमित्राजी उस समय प्रधानमंत्री थीं अवध के राज्य की। यह नियम रहा है कि जो छोटा होता है उसका अधिकार ज्यादा होता है। बड़े में बड़प्पन उदारता के कारण है, बड़े होने से नहीं। आज हम सोचते हैं कि चूंकि हम बड़े हैं इसलिए हमको आदर दो। यह प्राचीन प्राणाली नहीं है। आपने देखा होगा, गोस्वामी जी ने यह कहीं नहीं दिखाया कि भगवान् राम सुमित्रा जी से मिलने गए।

राजतिलक होने वाला है। अवध में बड़ा उत्साह हो रहा है। हर किसी के

हृदय में यह उत्साह है कि कल राम राजा होंगे। क्योंकि महाराजा दशरथ ने मंत्रियों से, गुरुजनों से परामर्श लेकर राम को राजा बनाने का निर्णय किया था; मनमानी करके नहीं किया था। किन्तु हुआ क्या?

महारानी कैकेयी ने महाराजा दशरथ से कहा कि मेरा जो वचन आपके पास है आज पूरा कर दो, मैं कुछ चाहती हूँ। राजा बोले, क्या चाहती हो? तो महारानी ने कहा कि राम को चौदह वर्ष के लिए वन भेज दो और भरत को राज्य दे दो। और वह भी कैसे भेजो? दल-बल के साथ नहीं, क्योंकि वह दल-बल के साथ—तो जहाँ राम तहाँ अवध हो जाता। ये नहीं। बल्कि -

तापस वेश विशेष उदासी।
चौदह बरसि रामु बनवासी॥

तपस्वियों का सा वेष बनाकर वन में जाएं। राजा बनकर नहीं, राजकुमार बनकर नहीं। क्योंकि यदि राम राजकुमार बन कर वन जाते तो जहाँ राम रहते वहाँ अवध हो जाता। विचार कीजिए! और आजीवन के लिए नहीं, चौदह वर्ष के लिए जाएं तथा भरत को राज्य दिया जाए।

यदि कैकयी को अपने पुत्र को ही राज्य दिलाना था तो यही मांग लेतीं कि भरत को राज्य दे दो और सदैव के लिए राज्य दे दो। भला क्या कोई माता अपनी संतान के स्वभाव से अपरिचित होगी! क्या महारानी कैकेयी इस बात से अपरिचित थीं कि श्री भरत जी में और राम में कितना प्रेम है? कभी नहीं। भली-भांति परिचित थीं।

राम को वन की आज्ञा हो गई। महाराजा दशरथ अत्यन्त अधीर हो गए, व्याकुल हो गए। जो पत्नी पति के प्यार की पात्र है वह पति के द्वारा अपमानित, तिरस्कृत होने लगी। जो कुछ कह सकते थे कहा, बचा कर नहीं रखा। आप जानते हैं, पुत्र के द्वारा माता पूज्य है। परन्तु भरत के द्वारा भी कैकेयी का अपमान हुआ और पति के द्वारा भी हुआ।

लेकिन आप देखेंगे प्रेमियों के जीवन में, माँ कौशल्या ने, लखनलाल ने किसी का अपमान किया क्या? नहीं किया। **क्योंकि प्रेमियों के हृदय में किसी से द्वेष होता ही नहीं।** यह प्रेम जो है इसकी अनेक श्रेणियाँ होती हैं। इसीलिए इसकी पूर्ति नहीं होती।

महाराजा दशरथ ने वन की आज्ञा दे दी। इधर प्रातःकाल से ही अम्बा कौशल्या बैठीं थीं कि राम लला आयेंगे, मैं उनकी आरती उतरूँगी, पूजन करूँगी; क्योंकि मेरा लाल आज राजा बनेगा। राम आए, किन्तु बड़े संकोच में। राम बड़े संकोच में हैं कि माँ के हृदय को आघात न पड़ जाय। कहने लगे - **पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।** - पिता ने मुझे वन का राज्य दिया है।

अम्बा कहने लगीं - ''दखो राम! अगर पिताजी ने तुम्हें वन का राज्य दिया है तो मैं माँ हूँ, अवध का राज्य दे सकती हूँ। लेकिन तुम्हारी कैकेयी मैया ने वन का राज्य दिया है तो वन में चले जाओ।'' कोई विद्रोह नहीं हुआ, कोई प्रश्न नहीं उठा। क्यों नहीं उठा? क्योंकि सभी जानते थे कि राम कैकेयी को अत्यन्त प्यारे हैं।

महाराजा दशरथ ने भी कहा - ''कैकेयी! तुम कैसी बात करती हो, क्या सोचती हो! तुम्हें तो राम अत्यन्त प्यारे लगते थे, तुम उन्हें वन में क्यों भेजती हो!!'' लेकिन इस रहस्य को प्रेमी ही जानते हैं कि कैकेयी इसलिए वनवास चाहती हैं **क्योंकि राम चाहते हैं कि वे वन को जाएं।**

- संतवाणी

◆◆

जिसके जीवन में पर-पीड़ा होती है उसके जीवन में करुणा की धारा अविरल बहती है। करुणा के रस से भोग की रुचि का नाश स्वतः हो जाता है

- संतवाणी

बस! इतनी बात है
(40)

मैंने एक बार रासलीला में कंस की सभा देखी थी। सामर्थ्य का जो अनन्त स्रोत है उसीका दिया हुआ बल लेकर कंस का अहंकार बड़ा पुष्ट हो गया कि मैं बड़ा बलिष्ट। सभा में बड़ी गर्जना हो रही है। किस बल पर? अनन्त बलशाली ने आंशिक बल दे दिया, तो उसीके बल पर अहंकार का बड़ा भारी गर्जन हो रहा है। इतनी देर में समाचार आया कि पूतना मारी गई। जैसे ही समाचार मिला कि पूतना मारी गई। तो कंस का जो अहंकार था वह एक दम काँप गया। कंसजी जो सिंहासन पर बैठे थे, उठकर खड़े हो गए, घबरा गए। अस्त्र-शस्त्र सब नीचे गिर गए और उसका पूरा शरीर थर-थर कांपने लगा। किससे? इस भय से कि कौन-सा ऐसा बालक हो सकता है छः दिन का जन्मा हुआ जो कि पूतना को मार सकता है?

इस समाचार को सुनकर उसका सब वैभव खत्म हो गया। किसीने उसका साथ नहीं दिया। मृत्यु के भय से वह कांपने लगा एकदम कि यह कौन हो सकता है, जो इतनी छोटी उम्र में पूतना को मार सकता है? क्या जाने, आगे चलकर वह मुझे भी मार डाले?

मृत्यु-रहित जीवन की आवश्यकता शरीर के बल ने पूरी नहीं की, बलशाली दरबारियों ने पूरी नहीं की। बहुत ही बलिष्ट और जोरदार सेना की शक्ति से भी यह भय नहीं मिटा।

इस उदाहरण को अपने सामने रखकर सोचना चाहिए कि अभी तक आपने जो कुछ बल का सम्पादन किया इस जगत में रहकर, उस बल के द्वारा अविनाशी-जीवन की आवश्कयता पूरी हुई क्या? किसी भी संगी-साथी, बुद्धिमानी और योग्यता के द्वारा मृत्यु के भय का नाश हो गया क्या? नहीं हुआ।

राजकुमार सिद्धार्थ ने एक मृतक को देखा, तो उस जागृत पुरुष ने यह जान लिया कि जैसे एक शरीर मृत्यु का ग्रास बन गया है, वैसे ही सभी शरीर मृत्यु के ग्रास बनेंगे। एक वृद्ध शरीर को देखा तो अपनी युवावस्था में वृद्धावस्था का दर्शन

कर लिया। एक मृतक को देखा, एक वृद्ध को देखा और एक रोगी को देखा। इन घटनाओं का प्रभाव इतना जोरदार हुआ कि उस वीर पुरुष ने ''हे क्षण भंगुर भव राम-राम'' - कहकर संसार से मुख मोड़ लिया। फिर उलट कर संसार की ओर देखा ही नहीं।

''मैं त्रिविध दुःख निवृत्ति हेतु,
बांधूं अपना पुरुषार्थ सेतु।
सर्वत्र उड़े कल्याण केतु,
तब हो मेरा सिद्धार्थ नाम।
हे क्षण भंगुर भव राम राम।

अनुभवी संत ने बहुत ही प्रैक्टीकल प्रयोग हम लोगों को बताया कि भाई, यह शरीर जिसका है, उसके लिए रहने दो। तुम अपने पर इतना ही उपकार करो कि पराई चीज को अपनी मत मानो। इतने ही उपकार से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। **भौतिकवादी हो, तो विश्व जीवन में मिला दो इसको। ईश्वरवादी हो, तो परमात्मा की मान लो इसको। और अध्यात्मवादी हो तो संसार से तुम्हारा सम्बन्ध है ही नहीं।**

भौतिक पहलू ले लें, अध्यात्म या आस्तिक पहलू ले लें। इससे कोई अन्तर नहीं आता। जो जीवन का सत्य है उसको जीवन में अपनाओगे नहीं, जगत के साथ जो करना चाहिए वह जगत के साथ करोगे नहीं शरीर के साथ जो सही दृष्टिकोण रखना चाहिए उस पर दृष्टि रखोगे नहीं और परमात्मा को मानने वाले हो तो परमात्मा के प्रति जो भाव रखना चाहिए वह भाव रखोगे नहीं, तो क्या कोई ऐसा जादू-मंत्र है कि जिससे तुम्हारा दुःख मिट जाए?

क्रिया शक्ति मिली है तो शुद्ध भौतिकवाद की दृष्टि से सेवा करने के लिए सभी को अपना मानो। भेद-भाव का नाश हो जाएगा, तो चित्त शुद्ध हो जाएगा। विचार की दृष्टि मिली है, विवेक का प्रकाश मिला है, तो नाशवान को नाशवान जानो। उससे असंग हो जाओ। यह केवल मानने की बात नहीं है, कल्पना और अनुमान की बात नहीं है।

निज विवेक के प्रकाश में नाशवान जानकर उससे अपना सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ेगा। उस पर से अपना अधिकार उठाना ही पड़ेगा। उसकी ममता का त्याग

करना ही पड़ेगा और उसका सहारा छोड़ना ही पड़ेगा। जो नाशवान का सहारा छोड़ देता है, उसमें अविनाशी तत्व अभिव्यक्त हो जाता है।

अमर जीवन का अभिलाषी नाशवान का सहारा छोड़ देता है, तो उसी में विद्यमान अविनाशी तत्व प्रगट हो जाता है। जो अनादि अनन्त जीवन का जिज्ञासु है, वह उत्पत्ति-विनाश युक्त का सहारा छोड़ देता है। संसार को छोड़ कर भाग जाओ, ऐसा नहीं कहा गया। सम्पत्ति उठा कर गंगा में डाल दो, ऐसा नहीं कहा। शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर काट दो, ऐसा नहीं कहा।

यह बस जिसके हैं, उसकी शक्ति और उसके विधान से कुशलतापूर्वक चल रहे हैं और चलते रहेंगे। तुम नहीं थे, तब भी सृष्टि चल रही थी और जब तुम नहीं रहोगे, तब भी चलेगी। इसलिए इसमें अपने को हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं है।

जिस कारण से हम सब लोग आसक्ति में, जन्म-मरण के बन्धन में बंध गये हैं, उस कारण को मिटाना है। वह कारण क्या है? मैं अविनाशी जीवन का अभिलाषी हूँ, अमर जीवन की आवश्यकता मुझे है, परम प्रेम की प्यास मुझमें है। तो जो अमर जीवन का अभिलाषी है, उसको मरणशील का सहारा नहीं लेना चाहिए, बस! इतनी बात है।

– देवकी माताजी

◆◆

भौतिकवादी हो तो अपने को विश्वजीवन में मिला दो। अध्यात्मवादी हो तो संसार से तुम्हारा संबंध है ही नहीं। आस्तिकवादी हो तो परमात्मा को अपना मान लो। किसी भी एक साधन-पद्धति को पूरी तरह अपना लो। तुम्हें जीवन की राह मिल जाएगी, अवश्य मिल जाएगी

– संतवाणी

इससे बड़ा प्रमाद और क्या होगा?

(41)

भगवान् में जिस प्रकार ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है, उसी प्रकार उनका माधुर्य भी अनन्त है। उन्होंने छः दिन की अवस्था में पूतना के प्राण चूस कर ऐश्वर्य की लीला करते हुए अपनी अहैतुकी कृपा से उसे भी वह गति प्रदान की जो बड़े-बड़े तपस्वी, मनीषियों को भी बड़ी कठिनाई से मिलती है। उन्होंने ब्रह्मा के अभिमान का नाश करने के लिए और गौओं तथा गोप-गोपियों के वात्सल्य प्रेम की लालसा को पूर्ण करने के लिए स्वयं गौ-वत्स और वत्सपाल बन कर अपने ऐश्वर्य और माधुर्य को प्रकट करने वाली कैसी अद्‌भुत लीला की?

जो प्रभु अपने प्रेमी के लिए अपनी ऐश्वर्य शक्ति को भूलकर उसके वश में हो जाते हैं, अपने प्रेमी को प्रेमास्पद बनाकर स्वयं उसके प्रेमी बन जाते हैं, उस प्रेमी के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए पत्र-पुष्प, फल-जल आदि साधारण-से-साधारण पदार्थों के लिए लालायित रहते हैं। **ऐसे प्रभु को छोड़कर मनुष्य उनको अपना मानता है, जो कभी उसके नहीं हुए, इससे बड़ा प्रमाद और क्या होगा?**

– संतवाणी

♦♦

घर के मालिक बनकर नहीं माली बनकर रहो

– संतवाणी

हम सबका भी भर सकता है

(42)

स्विट्जरलैंड के विख्यात मानसिक रोगों के चिकित्सक और मनोविज्ञान के अध्यापक डॉ. बॉस की घटना मैं आपको सुनाती हूँ। वहाँ वह एक संस्था के निदेशक (Director) हैं। वे बड़े प्रतिष्ठित और विद्वान हैं। बड़ा शोध कार्य किया है उन्होंने। सारे संसार में जगह-जगह पर उनके पढ़ाए हुए विद्यार्थी, डाक्टर होकर चिकित्सक बने बैठे हैं, और मानसिक रोगियों की सेवा, चिकित्सा कर रहे हैं। उन्हें धन भी खूब मिला, सम्मान भी खूब मिला, बुद्धि का विकास भी उनका खूब हुआ। मनुष्य के व्यक्तित्व में से मानसिक दु:ख कैसे मिटाया जा सकता है - इस पर उन्होंने शोध कार्य भी खूब किया।

परन्तु सब कुछ करने के पश्चात् भी उनको लगा कि जगत् में सब कुछ हवा में डोल रहा है। किसी में स्थिरता नहीं है। किसी के नीचे कोई ठोस आधार नहीं दीखता है। तो वह खोज में हिन्दुस्तान चले आए और उनके मुख से निकला -

'As we study more and more in psychology, we find ourselves hanging in the air. Our findings are baseless. I have come to Indian Saints to find something more solid, more dependable which we can give to our students.'

सारांश कि - मनोविज्ञान के क्षेत्र में वे जितना अधिक अध्ययन करते हैं उतना ही उनका ज्ञान निराधार मालूम होता है। वे चाहते हैं कि कुछ अधिक विश्वसनीय तत्व प्राप्त हो। इसीके लिए वे भारतीय संतों के पास आए हैं, ताकि अपने विद्यार्थियों को कुछ अधिक विश्वसनीय तत्व दे सकें।

वह खोजते हुए भारत भूमि पर आ गए और भगवत् कृपा से ऐसे संत उनको मिल गए कि जिनके पास Something solid था। उन्होंने कोई व्याख्यान नहीं दिया, कोई बातचीत नहीं की। वह स्विस भाषा जानने वाले या फिर अंग्रेजी पढ़ने-लिखने वाले थे। यहाँ मराठा संत गोविन्द स्वामीजी चौथी-पाँचवी तक पढ़े हुए थे। अंग्रेजी इनको आती नहीं थी। लेकिन Something solid उनके पास था, जिसकी

मस्ती में वे सदा मस्त रहते थे। बिलकुल निश्चिंत व निर्भय होकर विचरते थे। सर्व उत्पत्ति का आधार जो अनादि, अनन्त है वह आधार उन संत के पास था। दोनों की भेंट हो गई।

प्यास भरी दृष्टि से डॉ. बॉस ने श्री गोविन्द स्वामीजी को देखा। एक ओर का पात्र तो खाली था और दूसरी ओर के पात्र से रस उमड़ रहा था। बात करने की जरूरत नहीं, मंत्र सिखाने की जरूरत नहीं, न कोई जप-तप करने की जरूरत पड़ी। भीतर में आवश्यकता बहुत तीव्र थी तो उमड़ते हुए पात्र ने खाली पात्र को भर दिया। छटपटाते व्यक्ति को ठोस आधार मिल गया जिससे जीवन भरपूर हो गया।

तो यहाँ उपस्थित आप सब सत्संग प्रेमी भाई-बहिनों की सेवा में मेरा निवेदन है कि आज हममें से अधिकांश लोग सूनेपन व अभाव की पीड़ा से पीड़ित हैं। मैं पूरे विश्वास के साथ कह रही हूँ कि अचल आधार प्राप्ति की व्याकुलता के आधार पर, परम प्रेम की प्राप्ति की तीव्र प्यास के आधार पर, हमारा पात्र भी भर सकता है। वे सर्व समर्थ अपनी ही कृपालुता से, अपने ही प्रेमी स्वभाव से हम साधकों की ऐसी मदद करते हैं कि हमें पूरा पक्का विश्वास हो जाए। एक का पात्र भरा तो हम सबका भी भर सकता है, ऐसा मैं दृढ़ विश्वास के साथ निवेदन कर रही हूँ।

आवश्यकता केवल तीव्र प्यास की है, जैसी कि डॉ. बॉस के जीवन में रही होगी।

- देवकी माताजी

◆◆

दूसरों को आदर वही दे सकता है जो स्वयं आदर के योग्य हो
- संतवाणी

निगोड़ी जबसे गई है तबसे .....

(43)

अ. भा. विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा ने सुन रखा था कि पहुँचे हुए व्यक्तियों को अपनी निद्रा आदि शारीरिक विषयों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। इसी संदर्भ में उन्होंने एक दिन मुझसे पूछा, 'शांतिस्वरूपजी! मैंने सुना है, स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज कभी सोते नहीं थे। निद्रा पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। इस बात की पुष्टि कैसे हो?'

उनकी इस बात से एक बार तो मैं आश्चर्यचकित हो गया। बात आई गई हो गई। मेरे पास उनके इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था।

मैंने बातों-बातों में एक दिन उनसे कहा, 'गुरुजी! स्वामीजी की निद्रा संबंधी बात की जानकारी एक ही व्यक्ति से मिल सकती है - वह हैं नाथजी महाराज (श्रीहरिनाथजी), जो स्वामीजी महाराज के निकट साथी के रूप में 15-20 वर्ष उनके साथ रहे हैं।'

उन्होंने पूछा, 'नाथजी महाराज से मिलना कैसे और कहाँ हो सकता है?'

मैंने कहा, 'आश्रम तो उनका मझेवला में है पर अभी वो रह रहे हैं, जोधपुर के नजदीक जाट बाबा की ढ़ाणी में।'

'आप जाट बाबा की ढ़ाणी की जानकारी करो। मैं उनसे स्वामीजी विषयक और भी कुछ जिज्ञासाओं की निवृत्ति करना चाहता हूँ।' - गुरुजी ने कहा।

मैंने जाट बाबा की ढ़ाणी, जो जोधपुर से कोई 20-25 किलोमीटर दूर जयपुर-जोधपुर मार्ग पर स्थित है, की जानकारी करके गुरुजी को सूचित कर दिया। आखिर एक दिन वहाँ हमारा जाने का कार्यक्रम निश्चित हो गया और हम दोनों जयपुर से वहाँ पहुँच भी गए।

लोढ़ा साहब ने स्वामीजी महाराज के विषय में नाथजी महाराज से अपनी कई प्रकार की जिज्ञासाओं का शमन किया। स्वामीजी को निद्रा आने-जाने की

बात जब उनसे पूछी तो उन्होंने कहा –

'मैं निश्चित रूप से तो नहीं कह सकता कि स्वामीजी महाराज सोते थे या नहीं। पर एक मर्तबा की घटना से कुछ संकेत अवश्य मिलता है कि निद्रा पर उनका पूर्ण नियंत्रण था।'

नाथजी महाराज ने आगे कहा – 'एक दिन मैं स्वामीजी महाराज की खटिया के पास बैठा हुआ विचारमग्न था कि जिस घर में हम ठहरे हुए थे, उसके मालिक ने एकाएक कमरे में प्रवेश किया और धीरे से महाराज से पूछा – महाराजजी! नींद आ रही है क्या? इस प्रश्न के 5–7 सेकिंड बाद महाराज अपना एक हाथ ऊपर उठाकर जोर से अंगड़ाई लेते हुए बोले – अरे यार! निगोड़ी जब से गई है तब से आई ही नहीं।'

'उनके इस संकेत पर उस समय तो मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु आज आपने पूछा है तो मुझे वह घटना याद आ गई – सो आपको बता दी।'

बाद में विचार विनिमय के समय लोढ़ा साहब ने कहा, 'शांतिस्वरूपजी! संत लोग ऐसे प्रश्नों का सीधा उत्तर क्या दें? संकेत में ही सब कुछ कह देते हैं। समझने वाला समझ जाय।'

– शांतिस्वरूप गुप्ता

♦♦

आदर के योग्य वही होता है जिसमें आदर पाने की वासना नहीं होती
– संतवाणी

जीवन आनन्दमय कैसे बने?

(44)

सन् 1959 की बात है। उस समय मैं अजमेर स्थित राजस्थान लोक-सेवा आयोग के सदस्य के पद पर कार्य कर रहा था। स्वामीजी महाराज कभी-कभी अजमेर से गुजरते थे और हम लोग उनके दर्शनार्थ स्टेशन पर आया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर लगभग 15-20 व्यक्ति जिनमें, जहाँ तक मुझे याद है, मेरे मित्र और स्वामीजी के परम भक्त श्री मदनमोहन वर्मा और श्री लक्ष्मीलाल जोशी भी थे, अजमेर के स्टेशन पर गए थे। स्वामीजी से बातचीत होती रही और जब गाड़ी छूटने को हुई तो स्वामीजी अपने डब्बे के दरवाजे पर खड़े हो गए।

इसी समय हममें से किसी एक व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया - ''स्वामीजी जीवन आनंदमय कैसे बने?''

मैंने सोचा यह महाशय भी अजीब हैं कि गाड़ी छूटने के अवसर पर ऐसा प्रश्न किया। इसके समाधान के लिए तो एक लंबे प्रवचन की आवश्कता होगी। परन्तु स्वामीजी तुरंत बोले, ''भइया बहुत आसान है अगर कर सको तो। दूसरों के दु:ख में दु:खी और दूसरों के सुख में सुखी होना सीख लो, जीवन आनंदमय हो जाएगा।''

उसी समय गार्ड ने सीटी दी और गाड़ी चल दी।

- श्री रघुकुल तिलक
भू.पू. राज्यपाल, राजस्थान

♦♦

अपना सुख बढ़ता है, अपना सुख बाँटने से तथा अपना दु:ख घटता है, दूसरों का दु:ख बंटाने से

- संतवाणी

हमारे दु:ख का कारण
(45)

मैं एक दिन बहुत छोटी-सी किताब पढ़ रही थी। उसमें लिखा था कि चम्पारन के सत्याग्रह में जब गाँधीजी काम कर रहे थे, तो वहाँ की जनता में से किसी जानकार व्यक्ति ने गाँधीजी से कहा, ''गांधीजी! आज सायंकाल के बाद आप बाहर मत निकलिएगा, क्योंकि अंग्रेजी सरकार के ऑफीसरों ने आज कुछ आदमियों को तैनात किया है कि वे आपको मार डालें। इसलिए बाहर मत निकलिएगा।''

संत कोटि के लोग दूसरों के लिए दु:ख सहते हैं। तो गाँधीजी ने सुन लिया। उन्होंने अपनी विशेषता नहीं बताई, अपने त्याग और निर्भयता के गुण नहीं गाए। जो कहा सो सुन लिया। ठीक है भाई! आप लोग हित चिन्तक हैं, कहने आए हैं, अच्छी बात है। सब लोग चले गए।

दस बजे रात को गाँधीजी निकले अपनी कुटिया में से और सीधे जिला मजिस्ट्रेट के निवास पहुँच गए, जहाँ वे लोग रहते थे। वे अंग्रेज लोग सकपकाए और कहने लगे 'मिस्टर गाँधी! इस समय आप क्यों आए?' तो गाँधीजी हँस कर बोले कि – मैंने सुना कि मुझको मारने के लिए आपको अनुष्ठान करना पड़ा। मुझे खोजने के लिए आपके आदमी कहाँ-कहाँ ढूंढ़ते फिरेंगे, इसलिए मैं आ गया हूँ।' अंग्रेज बड़े शर्मिन्दा हो गए, हाथ जोड़ने लगे, क्षमा माँगने लगे। गाँधीजी हँसकर वहाँ से चले आए।

तो दूसरे लोग हमें हमारे दु:ख का कारण मालूम होते है। परन्तु, जब तक हम मोह-ग्रस्त हैं, तब तक जो कोई अपना विरोधी दिखाई देगा, उससे बड़ा भय रहेगा कि कहीं हमें मार न डाले। मोह के कारण भयभीत होना पड़ता है। मोह का नाश जिसका हो जाता है, उसको भय नहीं रहता। इसलिए उसको दु:ख भी नहीं होता।

– देवकी माताजी

♦♦

उनकी प्रयोगशाला के प्रयोग की एक बानगी
(46)

मानव सेवा संघ वृन्दावन का आश्रम जो बना है उस आश्रम की अधिष्ठात्री माताजी का '**शुद्ध बोध**' नाम महाराजजी ने रखा था। बाल विधवा स्त्री, देखने में अत्यंत कुरुप, एक कौड़ी अपने पास नहीं, कुटुम्बीजनों का कोई सहारा नहीं और शरीर में कितने प्रकार के रोग। ऐसे जीवन को महाराजजी ने हाथ में लिया और ईश्वर की शरणागति दी। सत्य का उनसे परिचय कराया। उनको साधना बताई और महाराजजी के देखते-देखते वह अपने देहातीत जीवन में आनन्दित हो गईं। परमात्मा के साथ मिलने का इतना आनंद उनको आ गया कि जिसकी कोई सीमा नहीं।

एक बार मैं मंदिर में उनके साथ दर्शन करने गई। स्वामीजी महाराज थे, माताजी थीं, मैं थी तथा और लोग भी थे। हम लोग दर्शन करके निकले तो महाराजजी के पीछे-पीछे चल रही शुद्धबोध माताजी कहती हैं कि 'स्वामीजी!। 'हाँ माताजी! क्या बात है?''तो महाराजजी! मंदिर में दर्शन करने जाओ और दर्शन करने वाला और भगवान् सब मिलकर एक हो जाएँ, तो क्या करें?' महाराजजी हँसने लगे और बोले - ''आनन्द करो माताजी। काम तो पूरा हो गया। अब क्या करना है?''

समझ में आ रहा है? गोस्वामीजी ने कहलवाया है भगवान् के श्रीमुख से-

''मम दर्शन फल परम अनूपा,
जीव पाव निज सहज सरूपा।''

लिखा है न? - ''मम दर्शन फल परम अनूपा'' - मेरे दर्शन फल अनुपम है। क्या होता है?''जीव पाव निज सहज सरूपा'' - जीव अपने सहज स्वरूप में लय हो जाता है। तो माताजी मंदिर में खड़ी होकर लय हो गईं। दर्शन करने वाला गायब हो गया। कहाँ गया? परमात्मा के स्वरूप में मिल गया और उसको पता नहीं चलता था कि मन्दिर है कि भगवान् हैं। कुछ दिख रहा है कि मैं देख रही हूँ। कितना समय बीत गया। कुछ पता ही नहीं चलता था। गयीं, भगवान् के विग्रह के सामने

खड़ी हुई। हम लोगों को मंदिर दिखाई देता है। मन्दिर में भगवान् का प्रतीक दिखाई देता है। मैं अपनी बुद्धिमानी की भाषा में कहती थी कि मंदिर में भगवान् का प्रतीक है। लेकिन जो लोग सच्चे साधक हैं उनको वह प्रतीक नहीं दीखता। उनको साक्षात् परमात्मा ही दीखते हैं।

वे अपने परम प्रेमास्पद से मिलीं और उनके मिलने-मात्र से अहम् जाकर लुप्त हो गया। अब माताजी को कैसे पता चले कि मैं दर्शन कर रही हूँ? 'मैं' अगर अलग हो तो उसे परमात्मा दिखे! 'मैं' जाकर 'है' में विलीन हो गया। 'मैं' अब रहा ही नहीं। बात खत्म हो गई। तो महाराजजी बहुत आनन्दित होते और कहते- 'कि माताजी! बस, हो गया काम। अब क्या करना है? बस, मस्त रहो।' उन माताजी का हाल स्वामीजी महाराज बताते और उन्हीं को नमूने की तरह लेकर मुझको कहते कि, **'देवकीजी! ऐसा दु:खी जीवन मुझे मिले तो मैं बड़ा हर्षित होता हूँ।** इस पर सत्य का प्रयोग करूँगा, इस पर प्रेम का प्रयोग करूँगा। उसका दु:ख मिट जाएगा, तो मुझे बड़ा आनन्द आएगा।' तो ये सब सतयुग की बात नहीं है, त्रेता-द्वापर की बात नहीं है? यह कलियुग की बात है और मेरी आँखों देखी बात है। मैं तो माताजी के संग रही हूँ, उनके प्यार-दुलार से बनाया हुआ भोजन किया है मैंने। उनसे बातचीत की है। देखा है उनको।

माताजी की पीठ में एक बार कारबंकल (घाव) हो गया। बड़े-बड़े भक्त थे उनके। आये सब लोग। डाक्टर लेकर आए। ऑपरेशन होगा, घाव को ठीक किया जायेगा। वे थीं एकदम दुबली-पतली। हार्ट जो था वह सिकुड़ कर छोटा हो गया था। सांस लेने में भी कठिनाई होती थी। लेकिन उनको कुछ पता नहीं चलता था कि शरीर में रोग है कि क्या है। हवा की तरह एकदम दिन-रात चलती-फिरतीं। संतों की सेवा, साधकों की सेवा, अतिथियों की सेवा दिनरात करती रहतीं और पड़ी हैं बिस्तर में। डॉक्टर कहने लगे कि इतना कमजोर शरीर है, रक्त तो है ही नहीं, ऑपरेशन कैसे होगा? उनको Anaesthesia कैसे दिया जायेगा? विचार में पड़ी माताजी और डाक्टर लोग, भक्त लोग खड़े हैं कि क्या किया जाये? बहुत पढ़ी-लिखी तो थी नहीं। देहाती बोली बोलतीं तो कहती कि दादा, क्या सोच रहे हो? तो उनके एक भक्त राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन के चेयरमैन थे - मदनमोहन वर्मा। अब उनका शरीर नहीं रहा। वो भक्त थे उनके। तो उनसे पूछा उन्होंने - दादा, क्या सोच रहे हो? तो उन्होंने कहा कि माताजी! बात ऐसी है कि

डॉक्टर को बहुत परेशानी हो रही है कि कैसे ऑपरेशन करें। शरीर में खून है ही नहीं। कैसे काम चलेगा?

अरे दादा! इतनी देर बेकार लगाई तुमने। हमको पहले क्यों नहीं कह दिया? मैं इसको (शरीर को) छोड़कर हट जाती। तुम कर लो ऑपरेशन, मैं इसको छोड़कर हट जाती हूँ। बेहोश करने की कौन जरूरत है? Anaesthesia की कोई बात नहीं है। मैं इसको (शरीर को) छोड़कर हट जाती हूँ। तुमको करना है, कर लो। और हो गया ऑपरेशन। बिना Anaesthesia के हो गया। शरीर शान्त पड़ा है। कोई है ही नहीं उसमें। काहे को हिलेगा डुलेगा? किसको पीड़ा होगी चीरफाड़ करने की? कोई पीड़ा नहीं। सब सफाई कर दी गई। और वे चुपचाप से हैं। काफी देर होने पर कहने लगीं कि दादा, अपना काम करो ना! तो वर्मा साहब बोले - माताजी हो गया। बोलीं - 'अच्छी बात है हो गया। इतनी सी बात के लिए तुम लोग परेशान क्यों थे? हमको बता देते तो पहले ही हो जाता।' बेपढ़ी-लिखी महिला, बाल-विधवा, देखने में एकदम कुरूप। एक कौड़ी पास में नहीं। कोई कुटुम्बीजन साथ देने वाले नहीं। उनका यह हाल। महाराजजी को बड़ा आनंद। दु:खी जीवन को हाथ में ले लो, सत्य के प्रयोग में डालो और उनके आनन्दमय जीवन को देखो। ये उनका प्रयोग था। यह उनकी प्रयोगशाला थी।

इस आधार पर मैं आप भाई-बहिनों की सेवा में निवेदन कर रही हूँ। आप भीतर-भीतर सकुचा करके मत रहिए कि हमारे से कैसे होगा? अरे! कैसे नहीं होगा भाई? **तुम खाली हाड़-माँस के पुतले थोड़े ही हो!** तुम्हारे भीतर जो मौलिक तत्व विद्यमान है उसका प्रकाश कैसे नहीं फैलेगा? तुम्हारे भीतर अखिल लोकदायक विश्रामा- जिसमें सारी सृष्टि विश्राम पाती है, सर्व उत्पत्ति का जो आधार है, वह तुम्हारे भीतर विद्यमान है। तो तुमको कैसे नहीं सँभालेगा! और नहीं सँभालेगा तो हमारी तरह उस पर मुकदमा चलाना कि तुमने बनाया क्यों, नहीं सँभालना है तो? बहुत ही सरस जीवन है। बेकार की बातों में, छोटे-छोटे दु:खों में हृदय के रत्न को नष्ट मत करो। छोटी-छोटी बातों में फँसने के लिए हम लोग नहीं हैं। **अनमोल जीवन को कौड़ी-कौड़ी में मत बेचो। सावधान हो जाओ। तुम्हारा बेड़ा पार होगा और सबको आनंद आएगा।**

- देवकी माताजी

♦♦

जोरदार दो फण्ड़
(47)

स्वामीजी महाराज ने कहा कि समाज की उदारता से सेवा की जो सामग्री तुम्हारे पास आवे उसका सदुपयोग करने का दायित्व तुम्हारे ऊपर है। चिन्ता करना तुम्हारी साधना नहीं है। अत: किसी भी साधक को किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए। श्री महाराजजी ने **जोरदार दो फण्ड** बताए हम लोगों को -

1. ईश्वर-विश्वास

2. कर्त्तव्य परायणता

मेरा विश्वास है कि महाराजजी के दिए हुए इन दोनों फण्डों को अगर हम लोग जीवन में धारण करके रखेंगे, ईश्वर-विश्वास और कर्त्तव्य परायणता का सहारा लेंगे, तो बिना चेष्टा किए सेवा की सामग्री हमारे पास आती रहेगी, जैसे अब तक आ रही है।

- देवकी माताजी

नोट -

हम देख रहे हैं कि आज लोगों का विश्वास स्थूल फण्डों (सिक्का और सम्पत्ति) के प्रति बढ़ता जा रहा है, जिनकी कोई स्थायी सत्ता नहीं। इसीलिए ये फण्ड, अफंडों का कारण बनते हैं। स्थायी सत्ता तो उपरोक्त दो फंड़ों की ही है।

♦ ♦

कोई और नहीं कोई गैर नहीं

- संतवाणी

रक्षा स्वतः हो जाती है

(48)

मानव–जीवन क्या है? कर्त्तव्य का प्रतीक। हमारी जिम्मेदारी है कि हम अपने साथ, जगत् के साथ और प्रभु के साथ कुछ कर्त्तव्य करें।

– अपने साथ	अपना कर्त्तव्य है कि हम अपने को बुरा न बनाएं।
– जगत् के साथ	हमारा कर्त्तव्य है कि हम जगत् को बुरा न समझें।
– प्रभु के साथ	हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनको अपना मानें।

मंगलमय विधान से कर्त्तव्यनिष्ठ के अधिकारों की रक्षा स्वतः हो जाती है और उसे जीवन की प्राप्ति के लिए अलग से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। अकिंचन, अचाह और अप्रयत्न अपने आप उसके जीवन में सिद्ध हो जाते हैं।

– संतवाणी

♦ ♦

भलाई दूसरों की करने से अपनी होती है, और सुधार अपना करने से दूसरों का होता है

– संतवाणी

इसी वर्तमान में हो सकती है
(49)

एक साधक एक बार स्वामीजी महाराज के पास आये और उन्होंने कहा कि स्वामीजी महाराज! मैं एक प्रश्न पूछने के लिए आया हूँ। मुझे उत्तर दे दीजिये, मैं चला जाऊँगा। बहुत दूर से आये थे। मुझको बड़ा कौतुहल हुआ। मैंने सोचा कि देखें, इनका ऐसा क्या प्रश्न है और स्वामीजी जी महाराज क्या उत्तर देते हैं! कॉपी-कलम लेकर तो मैं सदा बैठती ही थी महाराज जी के पास। सुनने लगी चुपचाप, बहुत ध्यान से। तो उन साधक ने कहा कि, "स्वामीजी महाराज, मुझे ठीक-ठीक बताइये कि मन की चंचलता का कभी भी सर्वांश में नाश होता है क्या - सर्वांश में?"

बड़े पुराने साधक थे। रिटायरमैन्ट के बाद शायद 20-25 वर्ष वे एकान्त में बिता चुके थे, ऐसे पुराने साधक थे। उन्होंने कहा कि "आंशिक रूप से तो मन की चंचलता मेरी शान्त हो गई है, मुझको कोई परेशानी नहीं है। लेकिन साधन में पूर्णता प्राप्त करने के लिए मन की चंचलता पूरी तरह से शान्त हो जाना चाहिए। तो आप मुझे ठीक-ठीक बताइये कि ऐसा थोड़ी-थोड़ी देर का आंशिक होता है कि सर्वांश में हो जाता है; और अगर हो जाता है तो कैसे होता है?" यह उन्होंने पूछा। और स्वामीजी महाराज ने बहुत थोड़े में और बड़े सुन्दर ढंग से उनके प्रश्न का उत्तर दे दिया और वे सज्जन सन्तुष्ट होकर चले भी गए। उनमें से अपने लोगों के लिए एक-दो बातें मैंने चुन लीं, मुझे बहुत अच्छी लगीं वे बातें। उनमें से एक मैं आपको सुना रही हूँ।

महाराज जी ने कहा कि देखो, **ज्ञान के प्रकाश में यदि तुम शरीर और संसार से अचाह हो जाओगे तो मन की चंचलता थम जायेगी, रुक जायेगी। केवल चाह ही, कामना ही एक ऐसा दोष है जिससे मन और चित्त चंचल रहता है।** एक उपाय हो गया। दूसरा उपाय उन्होंने यह बताया कि **अनेक प्रकार के भोगे हुए सुखों का प्रभाव अहं में अंकित हो गया है। उसके कारण संसार की ओर आकर्षण मालूम होता है और साधक का जीवन स्वीकार करने के बाद भी वे पुराने संस्कार कभी-कभी मन को, चित्त को उद्वेलित कर दिया**

करते हैं। तो राग-रहित होने के लिए सामर्थ्य भर, पूरी शक्ति खर्च करके पर पीड़ा में शामिल हो जाओ तो इसकी शुद्धि हो जायेगी व शान्ति मिल जायेगी।

और, आखिरी बात जो मैं विशेष रूप से कहना चाह रही हूँ, वह उन्होंने यह कही कि **सेवा के आधार पर शुद्धि हो जाती है, त्याग के आधार पर चंचलता मिटती है।** परन्तु भाई, सर्वांश में जो तुम चाहते हो **वह तो रस की अभिव्यक्ति होने के बाद ही होती है।** रस की अभिव्यक्ति! खूब सेवा कर ली तो राग-रहित हो गये और ज्ञान के आधार पर शरीर से सम्बन्ध तोड़ लिया तो समता आ गई। फिर भी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहं जब तक जीवित रहेगा तब तक परिच्छिन्नता का दोष बना रहेगा। और सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सुन्दर से सुन्दर, शुद्ध-से-शुद्ध अहं भी कब मिटता है? **जब रस की अभिव्यक्ति होती है,** तब मिटता है। तो अन्तिम उपाय क्या है? अन्तिम उपाय है कि **किसी-न-किसी आधार पर सम्पूर्ण जीवन परम-पवित्र प्रेम के रस से भरपूर हो जाय।**

तो आज हम और आप क्या कर सकते हैं इस दिशा में, यह देख लीजिए। अपनी बातचीत का केन्द्र मैं यही रखती हूँ कि कितना भी बढ़िया सिद्धान्त हो, कितना भी बढ़िया उपाय हो, कितनी भी ऊँची चर्चा हो। जो भी कुछ हो, हम और आप मिलकर साधक की हैसियत से बात करने बैठे हैं तो जो भी कुछ उपाय सामने आया वह हमारे-आपके लिए इस वर्तमान दशा में कहाँ पर फिट हो सकता है, सो भी देख लेना चाहिए। तो हम लोग देख लें। सेवा करने के लिए भी क्षेत्र है, सेवा कर सकते हैं। ज्ञान का प्रयोग करने में भी कोई बाधा नहीं है। ज्ञान का प्रयोग करके हम असत् का त्याग कर लेंगे। और, प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए आज इस वर्तमान क्षण में हम और आप क्या कर सकते हैं?

तो उसके लिए ईश्वर-विश्वास, भगवान् के प्रति श्रद्धा-भक्ति का भाव रखना, उनको अपना मानना, उनके प्यार के लिए जीना, उनसे किसी प्रकार का और कुछ दूसरा फल न मांगना। और, उन्हीं के नाते सारी सृष्टि को, उन्हीं के नाते प्राणी-मित्र को सेवा के लिए अपना मानकर सबका भला मनाना कि 'हे प्रभु! विश्व का कल्याण हो! हे प्रभु! संसार में सबका भला हो।' यह सबका भला किसलिये? - प्रभु की सृष्टि है। मैंने नहीं बनाई, आपने भी नहीं बनाई, जिसने बनाई उसको यह सृष्टि बड़ी प्यारी है।

तो उनकी प्यारी-प्यारी सृष्टि की हम सेवा करें, उनकी प्यारी-प्यारी सृष्टि

का हम भला मनायें। किस उद्देश्य से? कि उन परम प्रेमास्पद के प्रेम का पात्र हम बन सकें। तो आप देखियेगा कि यह प्रेम का जो तत्त्व है उसको हम लोगों को कहीं बाहर से लाना नहीं है। है तो अपने जीवन में, लेकिन कामनाओं से, वासनाओं से, तृष्णाओं से, ईर्ष्या-द्वेष से वह ढका हुआ है, इसलिए रस नहीं आता है। और, **जीवन में जब तक प्रेम की सरसता नहीं आती है तब तक चित्त की चंचलता, मन की चंचलता तथा इनकी अशुद्धि सदा-सदा के लिए सर्वांश में शांत नहीं होती है।**

तो आप संसार में शांतिपूर्वक रहना चाहते हैं और शरीर त्याग करने से पहले प्रेमास्पद के प्रेम में आनन्द विभोर होना चाहते हैं तो इस उद्देश्य की पूर्ति हम लोगों की हो सकती है, **इसी वर्तमान में हो सकती है,** यदि हम लोग इस दिशा में प्रयत्नशील होकर आगे बढ़ें।

- देवकी माताजी

♦♦

साधक सावधान
तीन घाटी महान्
सुख, सुविधा और सम्मान
- संतवाणी

यही मेरी व्यथा है
(50)

यह घटना संवत् 2008 की है। हमारे गाँव में, जहाँ जनहित आश्रम बना हुआ है, वट वृक्ष के नीचे पूज्य शरणानंदजी महाराज के सान्निध्य में सत्संग कार्यक्रम चल रहा था। उसमें आसपास के गाँवों के अनेक सत्संगी भाई पधारे हुए थे, जिनमें से एक कड़ैल के आर्य समाजी भक्त श्री दयारामजी सोनी भी थे। उस दिन स्वामीजी महाराज ने ''कोई और नहीं, कोई गैर नहीं'' विषय पर अपना प्रवचन दिया। जिसका उन आर्य समाजी बंधु पर विशेष प्रभाव पड़ा।

सत्संग के उपरांत उन महाशय ने प्रश्न किया - ''महाराज! कई लोग सूर्य को जल देते हैं। पत्थरों को शिव मान्यता देकर जल चढ़ाते हैं। क्या यह मूर्खता और ढीठता नहीं है? सूर्य को दिया गया अर्घ्य सूर्य तक कैसे पहुँचता है?''

स्वामीजी महाराज ने तपाक से उत्तर दिया - ''भैया! अगर कोई व्यक्ति आपके पिताजी-माताजी का नाम लेकर उनको गाली दे - तो आपको आक्रोश तो नहीं आता है!''

''आता है!''

''तो यह आपकी भूल है। वे तो यहाँ से बहुत दूर हैं तो फिर आपको क्रोध क्यों आता है? यज्ञादि करते हो तो वह परमेश्वर को कैसे प्राप्त होता है?''

''तो भैया! न तो मेरा किसी धर्म और सम्प्रदाय से विशेष लगाव है और न ही मैं किसी की आस्तिक भावना का विरोध करता हूँ। मैं तो मानव मात्र को एक समान मानता हूँ। मानव किसी भी आस्तिक भावना वाला हो, वह अपनी दृष्टि में बुराई रहित हो जाय, यही मेरी व्यथा है।''

स्वामीजी के विचारों से प्रभावित होकर उन महाशय ने दूसरे ही दिन कड़ैल के बहुत पुराने आर्य समाज भवन में उनका सत्संग कार्यक्रम रखा। जबकि अक्सर आर्य समाजी बंधु आर्य समाजी संतों के सिवा अपने यहां अन्य मान्यता वालों के प्रवचन नहीं होने देते। उन महाशय ने अपने धन्यवाद भाषण में फरमाया कि –

''स्वामीजी महाराज ने आज जो प्रवचन दिया, उसमें सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध एक भी बात नहीं थी।'' उन्होंने अत्यंत कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित किया।

– लादूसिंह राजपुरोहित
मझेवला (अजमेर)

◆◆

खूब सेवा करली तो राग-रहित हो गये और ज्ञान के आधार पर शरीर से संबंध तोड़ लिया तो समता आ गई। फिर भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहं जब तक जीवित रहेगा तब तक परिच्छिन्नता का दोष बना रहेगा और सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सुन्दर से सुन्दर, शुद्ध से शुद्ध अहं भी कब मिटता है? जब रस की अभिव्यक्ति होती है, तब मिटता है। तो अंतिम उपाय क्या है? अन्तिम उपाय है कि किसी-न-किसी आधार पर सम्पूर्ण जीवन परम-पवित्र प्रेम के रस से भरपूर हो जाय।

– इसी पुस्तक से

विनोद में सत्य

(51)

(बीकानेर के वरिष्ठ साधक श्री बंसीधर बिहाणी, सेठ श्री जयदयालजी गोयन्का, स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज एवं स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज – तीनों के कृपा पात्र रहे हैं। आपने गहराई से निदिध्यासन किया है। स्वामीश्री शरणानंदजी महाराज से संबंधित सच्चे प्रसंग भेजे हैं जो यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं। इन प्रसंगों में स्वामीजी के विनोदी स्वभाव की झाँकी मिलती है।)

(i)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की वकील होने की तमन्ना थी। बाहरी आँखें होतीं तो जगत की वकालत करते। भीतरी आँखों से तो भीतरवाले की ही वकालत होती है। वकीलों को तर्कयुक्त बातें पसंद आती है, जबकि भक्त तो विश्वास से ही काम बना लेते हैं। वेदान्तियों को अथक परिश्रम करना पड़ता है– श्रवण, मनन, निदिध्यासन फिर गुरुशरण – तभी तो महावाक्य सुनने को मिलते हैं।

मैनपुरी की बात है। स्वामीजी एक वकील साहब के घर ठहरे थे। उनकी माँ ने स्वामीजी से प्रभु प्रेम संबंधी प्रश्न किया तो श्री महाराजजी ने फरमाया –

माताजी! जगत्पति ने जगत् बनाया मेरे लिए व मुझे बनाया अपने लिये। उनके नाते से उनके जगत् की सेवा करने पर उनका प्यार स्वतः मिल जाता है। उसके लिए अलग से कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

इस उत्तर से माताजी मुग्ध तो हो गईं, पर कहा – महाराज! इसका खुलासा आप अपने अगले प्रवचन में करने की कृपा करें।

(ii)

उन्हीं वकील साहब के मित्र तापड़िया परिवार में मेरे श्वसुरजी थे जो मैनपुरी में ही रहते थे। उन्होंने स्वामीजी महाराज का प्रात:कालीन सत्संग अलग से रखा। संपर्क बहुत होने से सत्संग में उपस्थिति भी बहुत थी। सत्संग समाप्ति पर घर के बाहर निकलने में स्वामीजी महाराज को काफी समय लग गया - घर का दरवाजा छोटा जो था।

रास्ते में महाराजजी ने पूछा - 'यह किसका घर था? उपस्थिति बहुत अच्छी रही।' किशनलालजी ने फट कह दिया, 'महाराज! आपका ही है।'

'अरे यार! मैनपुरी में इतना अच्छा घर मिल गया। चलो फटाफट! कोर्ट अभी खुली है, वकील साथ में हैं। शुभस्य शीघ्रम्।'

उनकी इस बात से सुनने वालों को खूब आनंद आया।

(iii)

गीता भवन नं. 2 ऋषिकेश में राधाबाई नोपाणी ने स्वामी रामनिवासजी की प्रेरणा से संत के लिए फ्लेट बनवा दिया। मोहनलालजी नोपाणी ने उन्हें बम्बई में डॉक्टरों को दिखाया तो उन्होंने कह दिया - 'इनके हार्ट तो है ही नहीं। बिना हार्ट स्वेच्छा से चल रहे हैं। अब इनको अधिक चलना-फिरना नहीं चाहिए।' अत: रानी कोठी में ठहरना छोड़ फ्लेट में रहने लगे।

एक बार संत मंडली सहित पहुँच गये। चौकीदार चाबी लाना भूल गया। संत बाहर ही बैठ गये। सत्संग समाप्त होते ही सेठजी पहुँचे और संत मंडली को धूप में बैठे देखा तो बोले - 'अरे ताला तुड़वा देते, बाहर क्यों बैठे रहे?'

महाराज जी फट से बोले - 'बाप का पैसा बेटा कैसे बरबाद करे? चाहे दस रुपयों का हो चाहे लाख का। बेटा धूप सह सकता है, बाप के पैसा की बरबादी नहीं।'

उपस्थितजन स्वामीजी महाराज के मुख की ओर निहारने लगे।

(iv)

बीकानेर में मेरे पड़ोस में गोपीनाथ भवन में सेठ गोपीलालजी पुंगलिया ने महाराजजी को अपने घर बुलाया था। उन्होंने पूछा – 'महाराज! आप, गीता, रामायण, सब चाह-रहित होने की प्रेरणा देते हैं। हमारे लिए तो चाह-रहित होना बहुत कठिन है।' स्वामीजी बोले, 'यार! परसों वृन्दावन जाना है। बच्चियों के लिए रसगुल्ला, भुजिया, पापड़, उदारता से मँगा देना।'

पंडित दुर्गादासजी ने, जो वहाँ मौजूद थे, सेठजी से अलग से कहा – ''पूछो इनको! खुद तो रसगुल्ला, भुजिया, पापड़ आदि की माँग करते हैं, बात करते हैं चाह रहित होने की।''

सेठजी ने कहा – ''मेरे से तो पूछा नहीं जायगा पंडितजी! आप ही मेरे नाम से पूछ लेना।''

शाम को प्रश्नोत्तर में पंडितजी ने कहा – ''महाराज! आदमी हर बात जन्म से देखकर सीखता है। हमें कोई भी चाह-रहित दिखा दो।''

स्वामीजी फट से बोले – **''पंडितजी! सेठजी का प्रश्न था, उन्हें उत्तर दे दिया। एक मैं हूँ, दूजे सेठजी हो सकते हैं। आप जैसे बुद्धिवालों के लिए बहुत कठिन है।''**

(v)

सुजानगढ़ में संत मस्ती में बैठे थे। उनके अनन्य भक्त बजरंग सोनी वहाँ की व्यवस्था में थे। बोले – 'महाराजजी! और कोई सेवा?'

महाराजजी फट से बोले – **'यार! तू क्या सेवा करेगा? संत की सेवा तो वे स्वयं ही कर लेते हैं।'**

इस वाक्य में विनोद के साथ-साथ फक्कड़पन, गहराई, निर्भीकता व प्रभु विश्वास – एक साथ परिलक्षित होते हैं।

– बंसीधर बिहाणी
बीकानेर

♦♦

संतजीवन-परिमल

(52)

- शादीलाल वर्मा
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

(1)

तो क्रांति आएगी

संत विनोबा भावे जी स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज को क्रान्त-द्रष्टा संत मानते थे। इसीलिए अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन, जो अप्रैल 1973 में कुरुक्षेत्र में आयोजित किया गया था, के उद्घाटन भाषण के लिए स्वामीजी महाराज को आमंत्रित किया गया। मैं सम्मेलन के टैंट में समय से पूर्व पहुँच गया था। महाराजजी की प्रतीक्षा बड़ी बेसब्री से हो रही थी। टैन्ट खचाखच भरा हुआ था। इतने में मानव सेवा संघ की करनाल शाखा के मंत्री श्री हरिराम भाई ने महाराजजी का हाथ पकड़े टैन्ट में प्रवेश किया और उन्हें मंचासीन कर दिया।

परिचय आदि की औपचारिकता के पश्चात् स्वामीजी ने उद्घाटन भाषण देना आरंभ किया -

'देखा भैय्या! भाषण क्या है? एक सबल-बुद्धिवाला निर्बल-बुद्धिवालों को दबा दे, भाषण हो गया। इसलिए भाषण नहीं विचार-विनिमय होना चाहिए। बिना पूछे बताया हुआ और बिना जरूरत के पूछा हुआ - दोनों नहीं ठहरते। **सर्वोदय मेरा प्राण है और मानव सेवा संघ मेरा जीवन है। दूसरों को बदलने की सोचोगे तो आन्दोलन होगा। आन्दोलनों से बुराई दब जाती है, मिटती नहीं। अपने को बदलने की सोचोगे तो क्रान्ति आएगी। क्रान्ति से बुराई मिट जाती है।**' बड़े ही आत्मीय ढंग से महाराजजी ने अपने उद्घाटन भाषण में सर्वोदय समाज का मार्ग-दर्शन किया।

(2)

जीवन मुक्ति

प्रश्न - महाराजजी! जीवन-मुक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर – इच्छाएँ रहते हुए प्राण चले जाएं, मृत्यु हो गई। प्राण रहते हुए इच्छाएँ चली जायँ, मुक्ति हो गई। मान लो, आप कुछ पैसे लेकर बाजार जाते हैं। जरूरत बनी रही और पैसे समाप्त हो गए। यदि जरूरत नहीं रही तो पैसे लेने वापस घर नहीं आना पड़ेगा।

(3)

विवेकवित् जीवन

एक महिला का प्रश्न –

महाराजजी! जब मुहल्लेवाले लड़के मेरे लड़के को तंग करते हैं, तो मैं उन्हें क्षमा कर देती हूँ और जब मेरा लड़का उन्हें तंग करता है तो मुझे उस पर क्रोध आता है। ऐसा क्यों होता है?

श्री महाराजजी का उत्तर –

अपमानित होने के डर से आप दूसरे लड़कों को क्षमा करती हैं और मोह के कारण अपने लड़के पर क्रोध करती हैं।

वह महिला जिस व्यवहार को अपना गुण मान रही थी, स्वामीजी ने उस व्यवहार में ही उसकी कमजोरी का दर्शन करवा दिया। **विवेकवित् जीवन में ही अपनी और दूसरों की भूलों का परिचय होता है।**

(4)

भौतिक उन्नति

श्री हरिरामजी को मैंने बटाला के महाशय गोकुलचन्दजी द्वारा अपने विषय में लिखा हुआ परिचय पत्र दिया और निवेदन किया कि – मैं 2-3 दिन महाराजजी के सान्निध्य में रहना चाहता हूँ। उन्होंने मुझे तुरन्त स्वीकृति दे दी और कहा कि आप हमारे साथ हमारी कार में ही चलें। मुझे श्री महाराजजी के साथ कार में बिठा दिया गया। मेरे जिज्ञासु मन में प्रश्नों की बाढ़ आ रही थी। मैंने प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिए।

प्रश्न – महाराजजी! विज्ञान जो इतनी उन्नति करता जा रहा है उसमें अध्यात्म का क्या स्थान है?

उत्तर – भौतिक उन्नति क्या है – $^{3}/_{4} = ^{75}/_{100}$ / । जिस अंश में सुविधा बढ़ती है उसी अनुपात में असुविधा भी बढ़ती है। हम लोग सरसों के तेल का दीया इस्तेमाल करते थे तो आँख की रोशनी कितनी तेज थी? आज ट्यूबलाइट और बल्ब का आविष्कार हो जाने पर नजर कमजोर होने लग गई। पहले जब घोड़े की सवारी करते थे, तब गिर पड़ने पर कितनी कम चोट लगती थी। आज जब कार या एयरोप्लेन में जाते हैं तब कितनी चोट लगती है। प्राण पखेरु उड़ने में भी देर नहीं लगती।

(5)

सुख भोग का परिणाम

प्रश्न – महाराजजी! क्या फैमिली-प्लानिंग के आधुनिक ढंग इस्तेमाल करने पर हम आत्मा को जन्म लेने से रोक सकते हैं?

उत्तर – आत्मा की बात अभी रहने दो। तुम यह जान लो कि ऐसा करने वाले आदमी पागल हो जायेंगे और औरतों को कैंसर जैसे भयंकर रोग हो जायेंगे। हम चाहते तो यह हैं कि सुख भोगते रहें और दु:ख से बचते रहें। पर यह कुदरत के कानून के खिलाफ बात है। प्रत्येक सुख-भोग का परिणाम दु:ख के रूप में भोगना ही पड़ेगा।

(6)

रसोईघर में ही सिद्धि

एक महिला का प्रश्न – महाराजजी! मेरे पति मुझे सत्संग में जाने से रोकते हैं। मैं अपना कल्याण कैसे कर सकती हूँ?

उत्तर – जब पति अच्छे मूड़ में हों तब आज्ञा ले लिया करो। यदि फिर भी न मानें तो मन, वाणी, कर्म से बुराई-रहित हो जाओ। तब रसोईघर में ही सिद्ध हो जाओगी। अपने कल्याण में कोई भी मानव कभी भी पराधीन नहीं है। अपनी सद्गति के लिए जगत् के सहयोग की लेशमात्र भी आवश्यता नहीं है।

श्री महाराजजी ने अन्यत्र कहीं यह भी कहा है कि – प्रत्येक साधक के साथ (1) जगत् की उदारता (2) प्रभु की कृपालुता और (3) सद्पुरुषों का सद्भाव सदैव रहता है।

(7)

विचार के मोती

कर्णपार्क (करनाल) की सड़क पर मैं श्री महाराजजी के साथ घूम रहा था। एकाएक उनके श्री मुख से निकल पड़ा –

विचार के जो मोती मैं जगत् के खलिहान में बिखेर कर जा रहा हूँ, यदि मानव समाज को जिन्दा रहना है तो उसे इनको उठाना ही होगा। मानव सेवा संघ की बात मानव की अपनी बात है। मैं चाहता हूँ कि यदि हरिरामजी जैसे मुझे 12 मानव सेवा संघ प्रेमी मिल जाते तो मैं निश्चिंत हो जाता।

मैंने कहा – महाराजजी! ऐसे तो आपके हजारों प्रेमी हो जायेंगे।

इस बात पर महाराजजी ने फरमाया – मेरे मरने के पश्चात् तो लाखों हो जायेंगे।

(8)

शाश्वत जीवन

जून 1973 में श्री महाराजजी का बटाला में शुभागमन हुआ। गाड़ी के भीड़-भाड़ वाले साधारण डब्बे में आपको सफर करना पड़ा। सहानुभूतिवश हमने पूछा कि महाराज! आपको मार्ग में बहुत कठिनाई झेलनी पड़ी। इस पर आपने तत्काल फरमाया – 'अरे भाई! वह तो भूतकाल की बात हो गई। अब तो मैं मजे में हूँ।' महाराजजी के साधारण वार्तालाप में भी हम लोगों के लिए कितना सीखने को भरा पड़ा है। हम तो भूतकाल की किसी भी कठिनाई को पकड़कर बैठ जाते हैं और उसका चिंतन करके दु:खी होते रहते हैं। महाराजजी का जीवन बताता है कि जिस भूतकाल ने हमको छोड़ दिया, हमें भी उसे छोड़ देना चाहिए। **वर्तमान काल में जीने वाले को ही शाश्वत जीवन मिलता है।**

(9)

साधन और जीवन की एकता

एक दिन स्वामीजी महाराज मुझे बुलाकर कहने लगे कि साधकों के पते लिखनेवाली उनकी डायरी भर गई है और मैं बाजार में जाकर दुकानदार से पाँच-सात डायरियाँ ले आऊँ जिनमें से वह एक छाँट लेंगे। मैं बाजार जाकर बुकसेलर

से कुछ ड़ायरियाँ ले आया। श्री महाराजजी ने एक डायरी लेकर जाँच के लिए उसका साइज देखा, जिल्द पर हाथ फेरा, डायरी को खोला और पन्नों पर उनकी मजबूती और मुलायमपन की जाँच करते हुए पूछा कि कितना भाग छपे अक्षरों से भरा है और कितना लिखने के लिए है? डायरी की कीमत पूछी और रख दी। सभी ड़ायरियों का इस प्रकार निरीक्षण किया। एक डायरी छाँटकर मुझे दे दी कि इसको खरीद लाओ।

मैं दंग रह गया, यह देखकर कि महाराजजी छोटे से छोटे काम को भी पूजा भाव से कितनी सजगता व सावधानी से अंजाम देते हैं। मुझे लगा कि - आपका जीवन ही आपकी शिक्षा थी। **जब साधन और जीवन में एकता हो जाती है, तब मानव का जीवन स्वयं विधान हो जाता है।**

(10)

विशेष लाभ

श्री महाराजजी साधकों के मध्य विराजमान थे। कहने लगे - हमारे साथ जो डॉ. बसंत मिश्रा चल रहे हैं, वे अमृतसर में अपने किसी परिचित मित्र से मिलना चाहते हैं। अत: हमें वापसी में एक दो घंटा पहले स्टेशन पहुँचा देना। यह अपने मित्र से मिल आयेंगे और हम स्टेशन पर इंतजार कर लेंगे।

महाराजजी ने अपने साथी के संकल्प का कितना ध्यान रखा? एक साधक ज्ञानप्रकाशजी कहने लगे कि हाँ महाराजजी! डॉ. बसंतजी को उनके संकल्प-पूर्त्ति का विशेष लाभ तो मिलना ही चाहिए। इस पर श्री महाराजजी ने फरमाया -

यह विशेष लाभ नहीं, साधारण लाभ है। विशेष लाभ तो यह है कि नि:संकल्प होकर रहा जाय। अपना संकल्प ही अपने को बाँधता है अत: संकल्प छोड़ने में ही कल्याण है। या तो हम दूसरों के आवश्यक संकल्पों की पूर्त्ति करें या स्वयं नि:संकल्प होकर रहें। कितनी ऊँची शिक्षा!

(11)

आपकी तो छूट सकती है

प्रश्नोत्तर काल के बीच एक माताजी ने प्रश्न किया - महाराजजी! मोह-ममता तो यशोदा मैया की भी नहीं छूटी थी, फिर हम साधारण लोगों की कैसे छूट सकती है?

श्री महाराजजी ने फरमाया - आपको कैसे पता चला की उनकी मोह-ममता नहीं छूटी थी। अगर यशोदा मैया की नहीं भी छूटी थी, तो आपकी तो छूट सकती है माताजी!

जिस साधन को हम पहाड़ की ऊंचाई जैसा कठिन मान रहे हैं, हमारे जीवन में उसकी संभाव्यता का हमें आश्वासन मिल रहा है। इससे बड़ा सौभाग्य हमारा क्या होगा? यही तो है पूर्ण संतों के दर्शनों का लाभ।

(12)

हरि आश्रय

एक दिन बटाला के एक टेलर मास्टर स्वामीजी महाराज को अपने घर ले गये। महाराजजी को घर की बैठक में बिठाकर एक फीता लाए और महाराज का माप लेने लगे। कहने लगे, 'महाराज! मैं दो नए चोले सींकर आपको भेंट करना चाहता हूँ।'

महाराजजी उसकी मंशा भांपकर कहने लगे कि तुम नए चोले बेशक मुझे भेंट कर दो, पर मैं तुम्हें पुराना चोला हरगिज नहीं दूँगा। यह तो चोला है, अगर तू मेरे शरीर की चमड़ी भी उतार कर पहन ले, तब भी कुछ नहीं होने वाला। जब तक स्वयं साधना नहीं करेगा कुछ नहीं होने वाला।

संतों के स्मृति-अवशेष (Relics) जमा करके हम अपने को दूसरों की नजरों में अधिक भाग्यशाली और महान् दिखाना चाहते हैं। परन्तु संत तो हमें वास्तव में महान् बनाना चाहते हैं। मिटनेवाली वस्तुओं का आश्रय छुड़वा कर संत हमें हरि-आश्रय ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं।

(13)

स्वभाव की ओर

बटाला के टेलर-मास्टर वीरजी ने महाराजजी से कहा कि उन्हें धन का अभाव बहुत सताता है। इस पर महाराजजी ने उत्तर दिया कि अभाव की चिंता नहीं करके साधक को धन के प्रभाव से बचना चाहिए। जगत् का प्रभाव ही तो हमें धन के साथ बाँधता है। जागृत साधक को तो अभाव रूप जगत् का प्रभाव अपने स्वभाव की ओर लौटने की प्रेरणा देता है।

(14)

गुरु साहब का ही दूसरा रूप

उन दिनों मैं डेरा बाबा नानक के स्कूल में पढ़ाता था, जो कि बटाला से 30 कि.मी. की दूरी पर है। मैंने महाराजजी को डेरा बाबा नानक पधारने के लिए राजी कर लिया। उनके प्रवचन सुनने के लिये मैंने कई लोगों की भीड़ स्कूल में ही जमा कर रखी थी। अपने गुरु महाराजजी के आगमन और प्रोग्राम की तैयारी बड़े उत्साहपूर्वक की गई थी। प्रश्नोत्तर के दौरान एक अध्यापक ने पूछा –

महाराज! जब तक दूसरे लोग बुराई नहीं छोड़ते, तब तक हम कैसे छोड़ सकते हैं?

महाराजजी ने फरमाया –

जब तुम्हें कोई चीज प्राप्त होती है तब तुम यह क्यों नहीं कहते कि जब तक यह दूसरे सबको नहीं मिल जाती हम भी इसे नहीं लेंगे? किसी भी नियम को पूरे रूप से अपनाना चाहिए।

अध्यापक महोदय निरुत्तर हो गए।

डेरा बाबा नानक की महिमा बताते हुए मैंने कहा – महाराजजी! यहाँ पर श्री गुरु नानक देवजी महाराज ने कई वर्ष तप किया था। इस पर वह बोले – उन्होंने तप किया होगा भाई। हम तो आपके प्रेम की खातिर आ गए हैं।

यह उत्तर सुनकर मेरे ध्यान में आया कि एक एम.ए. पास की महिमा दूसरे एम.ए. पास के आगे क्या विशेष महत्त्व रखती है? आप तो स्वयं गुरु साहब का ही दूसरा रूप हैं।

(15)

भूल और प्रमाद

वापसी यात्रा में एक भाई ने महाराज श्री का एक संस्मरण मुझे सुनाया।

एक बार किन्हीं अभिनयकार को महाराज से मिलाकर जानकारी दी गई कि—महाराज! इस भाई ने रात के ड्रामे में कबीरदासजी का बहुत बढ़िया अभिनय किया।

तत्काल महाराजजी के श्रीमुख से निकला –

हाँ, भाई! जो जीवन का सत्य है, उसका तो ड्रामा करने लग गए और जिस जगत् को ड्रामा करके समझना चाहिए था, उसको सत्य मान लिया।

मानव की भूल और प्रमाद का कितना बढ़िया दिग्दर्शन!

(16)

तुम्हारी मुक्ति तो पक्की

बटाला ही में महाराज का सत्संग प्रश्नोत्तर के रूप में चल रहा था। हमारे एक अध्यापक महोदय ने प्रश्न किया –

'महाराज! सच्चाई के रास्ते पर चलते समय हमें यह भय रहता है कि हमें कोई मार न दे।'

उत्तर – **'देखो! भय तो बेईमान के जीवन में होता है।** तुम्हारे पास जगत् की एक वस्तु है यह शरीर, जिसे तुमने अपना मान रखा है। यदि सच्चाई के रास्ते पर चलते किसी ने इसे मिटा दिया तो हानि जगत् की होगी अथवा तुम्हारी? शरीर तो वैसे ही पल-पल मिट ही रहा है। सच्चाई पर चलते मिट गया तो तुम्हारी मुक्ति तो पक्की है कि करने के राग से सहज ही निवृत्त हो गए। इसलिए भय तो वैश्या को होता है सती साध्वी को नहीं।'

(17)

परम धन

डी.ए.वी. संस्था के प्रिंसीपल महोदय ने प्रश्न किया – महाराज! मेरा मन भगवान् में नहीं लगता, मैं क्या करूँ?

उत्तर – भैया! मन तुम्हारा और भगवान् में लग जाय। जब तक तुम्हारा रहेगा भगवान् में लग ही नहीं सकता। मन पर से अपनेपन की सील-मुहर हटा दो, मन तुरन्त भगवान् में लग जाएगा। तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि मन जैसी कोई चीज भी तुम्हारे पास है।

प्रश्न – महाराजजी! सचाई के रास्ते पर चलने में यह भय रहता है कि कहीं जो मिला हुआ है, वह भी छिन न जाय और आगे कुछ मिलने के रास्ते बंद हो जाये।

उत्तर – भैया! यह सोचो कि जो कुछ भी मिला हुआ है उससे तुम्हें मिला क्या? जीवन का अभाव मिट गया क्या? दरिद्रता मिट गई क्या? धन की गुलामी मिट गई क्या? **सच्चाई के रास्ते पर चलने वालों के जीवन में ही अभाव का अभाव होता है, जो कि परम धन है।**

(18)

भगवान् की याद

बटाला में श्री महाराजजी को एक दु:खद समाचार मिला कि उनके किन्हीं प्रेमी के युवा प्रोफेसर पुत्र का बस के नीचे आकर देहान्त हो गया है। संत का करुणित हृदय पसीज उठा। रात भर फोन के पास बैठकर उनसे बात करके उन्हें ढांढ़स बँधाना चाहते थे। प्रात: 3 बजे फोन पर बात हो पाई।

प्रात:कालीन सत्संग में श्री महाराजजी ने उसी करुणापूरित लहजे में बोलते हुए फरमाया – 'देखो भैया! जिन माँ–बाप का इकलौता बेटा बस के नीचे कुचला गया, उनको उसकी याद आ रही होगी या नहीं? इस याद में सदा अभाव रहेगा या पूर्णता होगी कभी? यदि उन्होंने वानप्रस्थ ले लिया होता तो बेटे की जगह उन्हें भगवान् की याद आती।'

प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग का कितना सजीव प्रमाण!

(19)

न अभी, न कभी

बटाला के एक डॉक्टर साहब ने पूछा – 'महाराजजी! जब यहाँ हम आपके सान्निध्य में बैठकर आपका सत्संग सुनते हैं तो ऐसे लगता है कि हमारी बात बन गई, अर्थात् सब कुछ समझ में आ गया। परन्तु आपके चले जाने के पश्चात् फिर, पहलेवाली स्थिति में लौट आते हैं, ऐसा क्यों?'

श्री महाराजजी – 'बाहरी बात तो यह है कि आपको अपनी दशा की पीड़ा नहीं होती! होती भी है तो हल्की–हल्की होती है और कभी–कभी होती है। भीतरी बात यह है कि आप हमसे दोस्ती नहीं करते। गुरु नहीं तो हमें अपना चेला ही मान लो, बाप नहीं तो हमें अपना बेटा ही मान लो। कोई तो संबंध जोड़ो, फिर देखो कि बात बनती है या नहीं। जब तक गुरु जिन्दा है, उसकी छाती पर चढ़ोगे, उसकी जान लोगे। जब वह मर जायेंगे उनकी मढ़ी पूजोगे। **पर उनकी बात न अभी मानोगे, न कभी मानोगे।**'

(20)

बर्बाद कर देगा

मैंने मकान बनाने के लिए अपने महकमे में लोन के लिए अर्जी दे रखी थी। इसके विषय में जब महाराजजी से बातचीत होने लगी तब महाराजजी ने फरमाया– 'देखो बेटा! मानव की व्यक्तिगत सम्पत्ति अवश्य होनी चाहिए। सम्पत्ति यदि राष्ट्र की होगी तो कोई भी शासक उसे युद्ध में झोंक कर बर्बाद कर देगा।'

(21)

कायदे का उल्लंघन

मानव सेवा संघ, वृंदावन आश्रम की बाहरी दीवार अभी कम ऊँचाई की ही थी। होली के वार्षिक समारोह में कुछ प्रतिष्ठित समाजसेवी सज्जन भी पधारे। प्रातः 3.00 बजे आश्रम पहुँचकर वे सीधे सन्त कुटी पहुँचे व अपना परिचय देकर महाराजजी को प्रणाम किया। महाराजजी ने पूछा – 'इस समय तो फाटक बंद रहता है, आप अंदर कैसे आए?'

नवागत भाईयों ने कहा – हाँ महाराज! फाटक तो बंद था। हम दीवार फांदकर आए हैं।

यह सुनकर महाराजजी को अत्यंत पीड़ा हुई। बोले – **कायदे का उल्लंघन करके, कायदे की बात सुनने आये हो!**

नवागत सज्जन शर्मिन्दगी महसूस करने लगे।

(22)

हमारी गर्दज हाजिर है

एक बार किसी भाई ने महाराजजी से प्रश्न किया कि यदि रात को घर में चोर घुस जाये तो क्या करना चाहिए?

श्री महाराजजी – पहले तो उन्हें बैठक में बिठा कर चाय–पानी के लिए पूछो और कहो कि जीवन में कभी बुराई नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसका फल भोगना पड़ता है। यदि वे न मानें तो कहो कि बच्चों के हिस्से को छोड़कर बाकी ले जाओ। **फिर भी न मानें तो कहो कि हमारी गर्दन हाजिर है, काटकर ले जाओ।**

(23)

फांसी के तख्ते पर भी चैन

एक बार श्री वृन्दावन आश्रम में होली के वार्षिक समारोह में एक सिन्धी नवयुवक पधारे। मैंने जिज्ञासावश उनसे पूछ लिया कि वे श्री महाराजजी से कब मिले? उन्होंने अपनी दास्तान यूं बयान की -

'एक बार मेरा ससुरालवालों से जबरदस्त झगड़ा हो गया। उन्होंने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया, यहाँ तक कि गाली-गलौज से पेश आए। मैं वापस तो आ गया, परन्तु चैन से सो नहीं सका। अपमान की पीड़ा से मेरा खून खौल रहा था। मैं हाथ में चाकू लेकर बाजार में घूमता कि यदि मेरे ससुराल का कोई भी व्यक्ति मुझे मिल जाए तो मैं उसके पेट में घौंप दूं।'

संयोग से बाजार में मुझे मेरा एक दोस्त मिल गया। मेरी दास्तान सुनकर वह मुझे कहने लगा कि - 'उसके पड़ौस में एक पहुँचे हुए संत आए हैं। चलो, आपको मैं उनसे मिला दूं। शायद आपको उनसे कोई ठंड़क मिल जाय।' मेरा मन संत से मिलने का नहीं हो रहा था परन्तु उनके 2-4 बार कहने पर अनमने मन से मैं उनके साथ संत के पास चला गया।

मैं प्रणाम करके उनके चरणों में बैठ गया। स्वामीजी महाराज ने मुझे पकड़कर तख्त पर अपने पास बैठा लिया। दोस्त ने मेरी पूरी राम-कहानी स्वामीजी महाराज को सुना दी। स्वामीजी महाराज बड़ी आत्मीयता से मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगे और बोले - **'देखो भैया! जिन्होंने माफ कर दिया, उनको फाँसी के तख्ते पर भी चैन मिला। जो बदला लेने की सोचता है वह अपने ही जख्म को हरा रखता है। नहीं तो वह कभी का सूख गया होता।'**

ऐसा हुआ मेरा महाराजजी से मिलन। उनकी अपनेपन की बातों से मेरा मन बदल गया। मैंने बदला लेने की भावना छोड़ दी। अब तो नियमित रूप से श्री महाराजजी के परामर्श से काम करने की आदत डाल रहा हूँ।

(24)

अर्थ की गुलामी से मुक्ति

होली के वार्षिक सत्संग समारोह के दौरान श्री वृन्दावन स्थित मानव सेवा संघ के आश्रम में संघ के ट्रस्टीगण एक मीटिंग के पश्चात् संतकुटी में स्वामीजी

महाराज के सम्मुख होकर फरमाने लगे -

''महाराजजी! मीटिंग में हम सबने यह निर्णय लिया है कि आश्रम पर जो आर्थिक संकट आया है, उस पर काबू पाने के लिए आश्रम की सड़क से सटी जमीन पर दुकानें बनाकर किराए पर चढ़ा दी जाएं। ऐसा करने से आश्रम को एक स्थायी आमदनी नियमित रूप से मिलती रहेगी।''

यह बात सुनते ही स्वामीजी महाराज आग बबूले हो गए और सिंह जैसी गर्जना कर बोले -

''यदि हमारा आश्रम समाज की भिक्षा से नहीं चल सकता तो तुम्हारी अकल से भी नहीं चलेगा। खबरदार! यदि आश्रम में एक पैसे की भी किराए की आमदनी करने की कोशिश की। आश्रम पर आर्थिक संकट तो केवल इसलिए आया है कि भगवान् हमें त्याग का पाठ पढ़ाकर संयमी बनाना चाहते हैं।''

सभी प्रकार से हमें स्वाधीन बनाने वाले संत अर्थ कि गुलामी कैसे स्वीकार कर सकते थे? जड़ जगत् के द्वारा उपस्थित हुआ सुख-दुःख हमारे प्रेमास्पद प्रभु के द्वारा ही भेजा हुआ होता है — इस सत्य को श्री महाराजजी जैसे तत्वज्ञ महापुरुष ही जानते हैं।

(25)

मर्यादित नसीहत

स्वामीजी महाराज के जीवन संबंधी संस्मरण हमारे जीवन के अनेक पहलुओं को छूने वाले हैं। घटना आश्रम के बालमंदिर की है। बालिकाओं का चरित्र निर्माण करने के लिए उनको साधिकाओं की गोद में रखा जाता था। पढ़ती तो वे वृन्दावन शहर के स्कूल में थीं पर आवास व्यवस्था बालमंदिर परिसर में ही की गई थी। बालमंदिर की एक छात्रा दसवीं कक्षा में पढ़ती थी। उन दिनों आश्रम कार्यालय में एक नवयुवक काम करता था। स्कूल से आते-जाते उस छात्रा और कार्यालय कर्मी की परस्पर नजदीकी बढ़ने लगी। बढ़ते-बढ़ते बात श्री स्वामीजी महाराज के कानों तक पहुँच गई। उस युवक को नौकरी से हटा दिया गया। छात्रा को संत कुटी में बुलाकर महाराजजी ने कहा - 'बिटिया! यदि अपना प्रेमधन यूं ही लुटा दोगी, तो जब तुम्हारा वास्तविक प्रेमी आ गया तो उसे क्या दोगी?'

इस मर्यादित नसीहत का प्रभाव छात्रा पर ऐसा पड़ा कि भूल तो पश्चाताप के आँसुओं में बह गई और संत का सान्निध्य पाकर उसका विवेक सदा के लिए जागृत हो गया।

(26)

यही होली है

होली के वार्षिक सत्संग के दौरान श्री महाराजजी संत कुटी में तख्त पर लेटे-लेटे गुनगुनाने लगे -

"राग-द्वेष की अग्नि जला दो, देहाभिमान मिट्टी में मिला दो, और प्रेम के रंग में रंग जाओ - यही होली है।"

प्रत्येक उत्सव व प्रत्येक घटना का आध्यात्मिक-अर्थ निकालकर श्री महाराजजी जीवन को ही गुरु का दर्जा प्रदान कर रहे हैं।

(27)

पहले भी तुम्हारी नहीं थी

मानव सेवा संघ के प्रथम प्रधान, सुप्रीम कोर्ट के रिटायर्ड चीफ जस्टिस श्री बी.पी. सिन्हा साहब श्री महाराजजी के सान्निध्य में बिराजमान थे। एकाएक कहने लगे, 'महाराजजी! 73 वर्ष का हो गया हूँ। मेरी आँखों की ज्योति निरन्तर जा रही है।'

श्री महाराजजी ने फरमाया - 'भैया! आँख की ज्योति तो पहले भी तुम्हारी नहीं थी। पता आज चला जब जा रही है।'

कितना महत्त्वपूर्ण उपदेश है हम सबके लिए। मिली हुई वस्तुओं को सदा के लिए मिली हुई मान लेते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि एक दिन हम बिना साथी व सामान के हो जायेंगे। इसलिए प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग करके, करने का राग मिटाकर हमें योगवित् हो जाना चाहिए।

(28)

पहली ही बार मारने आए हैं

श्री महाराजजी बिहार के बड़े मंदिर की घटना का वर्णन कर रहे थे। जहाँ देवकी बहिनजी भी हो आई थीं। एक दिन आधी रात के घटाटोप अंधेरे में कुछ

चोर चेहरे पर पट्टी बाँधकर मंदिर की मूर्तियाँ व गहने चुराने आ गए। वे जैसे ही बाहरी दीवार फाँदकर भीतर घुसे, वहाँ का पुजारी जग गया। उसने उनमें से एक चोर को पहचान लिया। चोरों ने पकड़े जाने के भय से पुजारी को मार डालने का मन बना लिया। वे चाकू निकालकर पुजारी की ओर बढ़ने लगे।

पुजारी काँपता हुआ भगवान् सदाशिव की मूर्त्ति की ओर मुखातिब हुआ और उनके चरणों में गिर पड़ा। जैसे ही चोर उसके शरीर पर चाकुओं से वार करने लगे, मूर्ति से एक गंभीर आवाज प्रकट हुई - ''ए पुजारी! तू इन चोरों को चार मर्तबा कत्ल कर चुका है, घबराता क्यों है? यह तो तुझे पहली ही बार मारने आए हैं।''

जैसे ही इस आवाज को चोरों ने सुना, वे हथियार फेंक कर पुजारी के पाँवों में पड़ गए। क्षमादान के साथ वे पुजारी से नाम-दीक्षा की याचना करने लगे। बुराई का मार्ग छोड़ प्रभु की भक्ति के मार्ग पर लग गए।

(29)

एकमात्र उपाय

एक बार दिल्ली पुलिस के एक एस.पी. साहब गमगीन अवस्था में श्री महाराजजी के पास मन को हलका करने हेतु पधारे। उनका इकलौता नवयवुक पुत्र बस के नीचे कुचलकर मर गया था। वह महाराजजी के चरणों को पकड़कर आँसू बहा रहे थे। बोले -

''महाराजजी! जब मैं एस.पी. प्रोमोट हुआ, मेरे दोस्तों ने मुझे दावत के लिए कहीं बाहर ही रोक लिया। जब मैं देर रात घर पहुँचा तो मेरी पत्नी व पुत्र दोनों बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। पुत्र गुस्से में बोल पड़ा - डैडी! यू हैव नो राइट टू टार्चर माई मदर लाइक दिस (मेरी माँ को इस प्रकार प्रताड़ित करने का आपको कोई अधिकार नहीं है)। यदि आपने देर से आना था तो फोन तो कर दिया होता।''

''महाराजजी! इतना होनहार था मेरा बेटा। पुलिस में होते हुए भी न तो मैंने किसी को नाजायज कष्ट पहुँचाया और और न ही कभी किसी से रिश्वत ली। फिर भगवान् ने मेरा बेटा छीनकर मुझे कौन से पाप की सजा दी?''

श्री महाराजजी का करुण-हृदय द्रवित हो गया। आँखों में जल भर आया

और बोले-

''बेटा! आप हमसे ज्यादा जानते हैं। संत और साधारण पुरुष में बस इतना फर्क होता है कि संत जितना जानता है उतना मानता भी है। साधारण पुरुष भी जानता तो है, परन्तु मानता नहीं। क्या तुम यह नहीं जानते कि जन्मते ही मृत्यु का आरम्भ हो जाता है। यह ज्ञान हमें मोह-रहित होकर जीने का पाठ पढ़ाता है। मिला हुआ कब अलग हो जाय कोई नहीं जानता। इसलिए बेटे! पर का आश्रय छोड़कर अतिशीघ्र हरि-आश्रय ग्रहण कर लो, यही दु:ख से मुक्ति का एकमात्र उपाय है।''

(30)

संत दर्शन का लाभ

श्री महाराजजी कहा करते थे कि दु:खी व्यक्ति जब संत के पास आता है तो उसका दु:ख संत के हृदय में प्रवेश करके भस्म हो जाता है और संत की शांति दु:खी के हृदय में प्रवेश करके उसे ठंडक पहुँचाती है। **जैसे फणीधर साँप अपनी फुंकार द्वारा वायु को भीतर खेंचकर, उसके दोषों को अपने में जज्ब करके, उसे शुद्ध बनाता है। उसी प्रकार संतजन दु:खी प्राणियों के दु:खों का पान करके उन्हें राहत पहुँचाते हैं।**

यही तो संत-दर्शन का परम लाभ है।

(31)

प्यारे की मौज में अपनी मौज

एक बार किसी भाई ने पूछ लिया कि महाराजजी कल कहाँ जाने का कार्यक्रम है? श्री महाराजजी ने उत्तर दिया -

'अरे! फुटबाल को क्या पता कि खिलाड़ी किधर ठोकर मारेगा?'

यह है शरणागति की इन्तहा कि अपने प्यारे के पैरों की फुटबाल बन गए। प्यारा जो चाहे सो करे, जिधर चाहे उधर भेज दे - उसकी मौज। नि:संकल्प हो जाना ही पूर्ण समर्पण है। यदि हमें सदा मौज में रहना है तो प्यारे की मौज में अपनी मौज मिला देनी चाहिए।

(32)

इतना बढ़िया खिलौना

एक बार अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के दर्शन-शास्त्र के रिसर्च स्कालरों ने श्री महाराजजी को निमंत्रण भेजकर विश्वविद्यालय में बुलाया। उन्होंने प्रश्न किया-

"महाराजजी! हमें ऐसा लगता है कि अब खुदा का हाथ साफ नहीं रहा। उनके द्वारा अच्छे इंसान कम और खराब इंसान ज्यादा बन रहे हैं। इस पर आपका क्या विचार है?" उन लोगों ने सुन रखा था कि स्वामी शरणानंद खुदा तक पहुँचा हुआ फ़कीर है। इसीलिए उनके आगे यह जिज्ञासा रखी गई।

श्री महाराजजी ने फरमाया -

"खुदा का हाथ कैसा भी क्यों न हो उन्होंने इतना बढ़िया खिलौना बना दिया जो कि अपने बनाने वाले का दोष भी निकाल सकता है। उस कारीगर की कारीगरी की दाद देनी चाहिए। बनाने वाले ने इंसान को विवेक का प्रकाश दिया, तथा उसके आदर या अनादर करने की स्वाधीनता भी प्रदान की। साथ में यह विधान भी बना दिया कि आप प्राप्त बल के द्वारा जो दूसरों के साथ करोगे वह कई गुणा होकर आपके पास लौटेगा।"

(33)

कितना मज़ा आएगा?

श्री वृन्दावन आश्रम में होली के वार्षिक सत्संग समारोह के बीच एक भाई मिश्राजी, श्री महाराजजी के सान्निध्य में मौजूद थे। वह महाराजजी के आदेश मानने की कुछ ज्यादा ही एक्टिंग कर रहे थे। महाराजजी ने उनकी मनोवृत्ति को भाँप लिया। कहने लगे -

"मिश्राजी! आप अच्छा कहलवाना तो चाहते हैं, परन्तु अच्छा होना नहीं चाहते। जरा विचार तो करो कि अच्छा कहलवाने में इतना मजा आता है, तब अच्छा होने में कितना मज़ा आएगा?"

(34)

सद्‌गुरु और शिष्य का संबंध

एक बार वृन्दावन आश्रम की संत कुटी में श्री महाराजजी विश्राम कर रहे थे। सेवा में सुश्री देवकी बहनजी तथा अन्य साधक मौजूद थे। महाराजजी बार-बार करवटें बदल रहे थे। यह देखकर देवकी बहनजी ने उनसे पूछा-

''महाराजजी! आपको क्या कष्ट है जो नींद नहीं आ रही?''

महाराजजी ने कहा -

''क्या बताऊँ बिटिया! किसी दु:खी का दु:ख लहरा-लहरा कर मेरे पास आ रहा है।''

महाराजजी को मानने वाला कोई भाई या बहिन किसी भयंकर कष्ट में फंस कर उन्हें याद कर रहा होगा और इधर महाराजजी बेताब होकर उसके कष्ट को झेल रहे हैं। ऐसा होता है एक सद्‌गुरु और शिष्य का संबंध। दूसरे की पीड़ा को इस तरह हरण कर लेना कि उसे पता भी न लगे।

(35)

भजन में विलीन

श्री वृन्दावन मानव सेवा संघ के आश्रम में श्री महाराजजी को हार्ट-अटैक हो गया था। आप कहने लगे कि हार्ट में असह्य पीड़ा है। साधकगण उन्हें हॉस्पिटल ले जाने की सोचने लगे। महाराज ने फरमाया कि मुझे हॉस्पिटल मत ले चलो और एक साधक भाई को मीरांजी का भजन गाने को कहा।

भजन सुनकर महाराजजी ने अपने को भजन में विलीन कर लिया और चैन से लेट गए। कुछ समय पश्चात् सामान्य व्यवहार में लग गए।

(36)

शक्ति अवश्य देंगे

वृन्दावन आश्रम में महाराजजी जब तक रहते, श्री बिहारीजी के दर्शनों के लिए जरूर जाते। डॉक्टरों के मना करने पर भी मुझे और श्री हरिरामजी को साथ लेकर बिहारीजी के लिए पैदल ही चल पड़े। श्री बांकेबिहारीजी का मंदिर होली

के उत्सव पर खूब सजाया गया था। महाराज अपने प्रेमास्पद की झाँकी देखकर आनंद विभोर हो रहे थे। गुंसाईजी भक्तों पर पिचकारी से रंग फेंक रहे थे। जब वे महाराजजी के मुखारविंद पर रंग की धार फेंकने वाले थे तो मैंने अपने दोनों हाथ फैलाकर बीच में पर्दा तान लिया। इस पर आप झट बोल पड़े -

''यह कौन बुद्धिमान है? हाथ हटाओ और हमें ठाकुरजी से होली खेलने दो।''

लगता है संत तो ठाकुरजी के श्री विग्रह को सजीव बनाने के लिए मंदिर जाते हैं।

दर्शनों के उपरांत जब हम बाहर आ गए तो हरिरामजी ने मुझे कहा - कि जाओ, कोई रिक्शा ढूँढ़ लाओ। डाक्टरों ने महाराजजी को अधिक चलने से मना कर रखा था। मैंने रिक्शा ढूँढ़ने का बहुत प्रयास किया, परन्तु होली के कारण रिक्शा कहीं नहीं मिला। मैंने उदास अवस्था में रिक्शा न मिलने की बात कही तो महाराजश्री ने फरमाया -

''चलो! पैदल ही चला जाय। यदि भगवान् ने साधन नहीं दिया तो शक्ति अवश्य देंगे। ऐसा हो नहीं सकता कि भगवान् दोनों में से एक भी न दें।''

और हम लोग पैदल ही चल कर आश्रम पहुँच गए।

(37)

सिद्ध बनाने के लिए

एक बार एक भाई साधना करने की दृष्टि से श्री वृन्दावन आश्रम में पधारे। एक दिन उनकी नोक-झोंक आश्रमवासी एक महिला के साथ हो गई। वह आग बबूला होकर अपने कमरे में गया और आश्रम छोड़कर जाने के लिए अपना सामान बाँध लिया।

वह संत-कुटी में जाकर श्री महाराजजी से अलविदा करने लगा। महाराजश्री ने उसके आश्रम छोड़कर जाने का कारण पूछा तो उसने कहा -

''महाराज! मैं यहाँ चैन से रहकर साधना करने आया था। आज आश्रम निवासी एक माताजी ने मुझे गन्दी गालियाँ दीं व अपमानित किया। साधना करने के लिए क्या माहौल ऐसा हुआ करता है। मैं तो एक पल भी ठहर नहीं सकता।''

श्री महाराजजी उसकी शिकायत सुनकर बोले -

''अरे! अपने कमरे में जाओ और बिस्तर खोल दो। जिस महिला ने तुम्हारा अपमान किया है वह तो तुम्हें सिद्ध बनाने के लिए आई है। अपमान की पीड़ा ने आपको यह बता दिया कि आप देहाभिमान में फँसे पड़े हो। **मानव की अपनी भूल ही उसे दुःखी करती है। जड़ जगत् की क्या मजाल कि तुम स्वयं-प्रकाश को दुःखी कर सके?**''

(38)

हिन्दू धर्म की मर्यादा

वृन्दावन आश्रम के प्रांगण में श्री महाराजजी अपने तख्त पर लेटे हुए थे। इतने में आश्रमवासी उनकी एक बिटिया श्री महाराजजी के सिर में तेल लगाने के लिए उनके पास सटकर बैठ गई। महाराजजी ने डॉटते हुए कहा - नीचे बैठकर सिर की मालिश करो।

इस पर बिटिया बोली कि बेटी को पिताजी के साथ बैठने में क्या एतराज है?

महाराज ने फरमाया - **''बेटी! यह हिन्दू धर्म की मर्यादा नहीं है कि जवान बिटिया अपने बाप के साथ सटकर बैठे।''**

यह है संत का प्रैक्टिकल जीवन जहाँ जीवन ही उपदेश होता है।

(39)

मृत्यु को ठहरना पड़ेगा

बहन देवकीजी ब्रैस्ट के टर्मीनल कैंसर के कारण हॉस्पिटल में भर्ती थीं। डॉक्टरों ने सब प्रकार की जाँच करने के पश्चात् अपनी सर्व-सम्मत राय दी कि वह जीवन के अंतिम काल में हैं। अब वह 5-7 दिन से अधिक जीवित नहीं रह पायेंगी। यह जानकारी जब देवकीजी के कानों में पड़ी तो उन्होंने तीव्र इच्छा जाहिर की कि अंतिम समय में वह श्री महाराजजी के दर्शन करना चाहती हैं।

टेलीग्राम भेजकर महाराजजी को बुला लिया गया। देवकी जी के कमरे में घुसकर महाराजजी उनके पलंग के पास स्टूल पर बैठ गए। प्रणाम करने के पश्चात् वह आँखों में आँसू भरकर बोलीं -

''महाराज! आपकी शिष्या बनने के पश्चात् बहुत तीव्र साधना की। परन्तु प्रभु-प्रेम की प्राप्ति नहीं हुई और यह शरीर जा रहा है।''

यह सुन महाराज श्री करुणित और गंभीर वाणी से बोल पड़े - ''देवकी बिटिया! यदि प्रभु विश्वासी साधक का शरीर भय रहते-रहते छूटता है तो आज तक प्रभु-विश्वास उठ गया होता। मृत्यु को ठहरना पड़ेगा। तुम्हें प्रभु-प्रेम पहले प्राप्त होगा और मृत्यु बाद में आएगी। जो संसार को पसंद करता है उसे मनचाही वस्तु मिल भी सकती है और नहीं भी मिले। परन्तु भगवान् को पसंद करने वाले की आयु कम भी हो तो वह बढ़ सकती है।''

महाराजजी के इस आश्वासन ने देवकीजी को भयमुक्त कर दिया। 5-7 दिनों में मरने वाली देवकीजी को 7 दिनों पश्चात् स्वस्थ घोषित करके घर भेज दिया गया। कई वर्षों पश्चात् उनका शरीर छूटा तो कैंसर से ही परन्तु मृत्यु के बहुत पहले ही वह प्रभु-प्रेम में डूब चुकी थीं।

(40)

बेचारा रोगी कहाँ जाएगा?

एक बार श्री महाराजजी देवकीजी के साथ सत्संग-टूर के निमित्त रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे थे। गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी। महाराजजी के अनेक प्रेमी उनके दर्शनों के लिए स्टेशन पर जमा थे। वे ड़ब्बे में घुसकर उनके पाँव छूने लगे। भीड़ में एक शराबी भी लड़खड़ाता हुआ उनके चरण छूने लगा। उसमें शराब की बदबू आ रही थी। देवकीजी भी साथ थीं। वह बोल पड़ीं -

''वाह महाराजजी! कितने बढ़िया-बढ़िया आपके प्रेमी हैं?''

इस पर महाराज ने फरमाया - ''देवकीजी! यदि डॉक्टर भी रोगी को ठुकरा देगा तो बेचारा रोगी कहाँ जाएगा?''

यह है संत की करुणा, जो सारे जगत् को आत्मवत् जानता है।

(41)

बाहर का जगत् भी देख सकते थे

यात्रा के दौरान लखनऊ स्टेशन पर श्री महाराजजी की गाड़ी रुकी। उनके एक प्रेमी श्रीवास्तवजी और उनकी पत्नी अलग-अलग बर्तनों में उनके लिए गाय का दूध लाये। श्रीवास्तवजी का बर्तन पकड़ कर महाराजजी ने कहा - ''यह दूध वह नहीं पी सकते। इसमें चीटियाँ हैं।'' भाई कहने लगे - ''महाराजजी! मेरे

बर्तन का ढ़क्कन पेचों वाला है। इसमें दूध मैंने अपने हाथों से डाला है। इसमें तो वायु भी नहीं घुस सकती।''

महाराजजी ने उनकी पत्नी वाले बर्तन का दूध पीलिया। जब भाई ने अपने डिब्बे का ढ़क्कन खोलकर देखा तो वह चकित रह गया। बरतन चींटियों से भरा पड़ा था।

लगता है महाराजजी बाहर का जगत् भी देख सकते थे।

(42)

प्रभु प्राप्ति में हेतु

एक बार लखनऊ के श्रीवास्तवजी महाराज से प्रश्न करने लगे -

''महाराजजी! मैं हर रोज मंदिर को धोता हूँ। श्री विग्रह के आगे आरती-अर्चना भी करता हूँ। परन्तु मुझे आज तक प्रभु दर्शन नहीं हुआ।''

श्री महाराजजी ने फरमाया -

''श्रीवास्तवजी! आप मजदूर क्यों बनते हैं? आप अफसर क्यों नहीं बनते? मजदूर बहुत काम करके केवल बीस रुपए की दिहाड़ी पाता है। अफसर को हस्ताक्षर करने के कारण ही चार सौ रुपये रोज मिलते हैं। आप मन्दिर धोने के स्थान पर भगवान् को अपना क्यों नहीं मान लेते? आत्मीयता ही प्रभु-प्राप्ति में हेतु है।''

(43)

लक्ष्य प्राप्ति का उपदेश

एक बार दिल्ली के एक जज अपनी पत्नी और नवजात बच्ची के साथ श्री महाराजजी का आशीर्वाद लेने आए। जज की पत्नी ने अपनी बच्ची को उनकी गोद में डाल दिया। महाराजजी चकित होकर पूछ बैठे कि यह किसकी बच्ची है? जज की पत्नी ने कहा कि महाराज! यह आपकी ही बच्ची है। महाराज कहने लगे— यदि हमारी है तो इसे यहीं छोड़ जाओ। सभी हँस दिए।

बच्ची की माँ ने कहा - **''महाराज आशीर्वाद दीजिए, हम इसे डाक्टर बनाना चाहते हैं।'' महाराज ने फरमाया - ''बिटिया! तुम्हारा संकल्प यह**

होना चाहिए कि हम इसे मानव बनाना चाहते हैं। भले ही यह कुछ भी बन जाए।''

लक्ष्य को प्राप्त संत सभी को लक्ष्य प्राप्ति का उपदेश और आशीर्वाद देते हैं।

(44)

शाश्वत मस्ती

एक बार श्री महाराजजी रेलगाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा कर रहे थे। उनके सामने वाली सीट पर मिलीट्री के ब्रिगेडियर बैठे थे। सांझ हो चुकी थी। ब्रिगेडियर साहब शराब पीना चाहते थे। संत को सामने पाकर वह हिचकिचा रहे थे। डरते-डरते उन्होंने बोतल निकाल ही ली तथा क्षमा चायना करते हुए पीने की आज्ञा माँगी।

उनकी कमजोरी को समझते हुए महाराजजी कहने लगे - ''डरो नहीं भाई! शराब तो हम भी रोज पीते हैं। फर्क केवल इतना है कि तुम्हारा नशा शीघ्र उतर जाएगा, जबकि हमारी मस्ती सदैव बनी रहती है।''

जब तक मानव को निरपेक्ष आनंद की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक वह भोगों की आधीनता को स्वीकार करके अपनी नीरसता को मिटाने का प्रयास करता रहता है।

(45)

उसकी आँखों का क्या उपयोग?

एक बार श्री महाराजजी गाड़ी में सफर कर रहे थे। एक जज साहब भी उन्हीं के डिब्बे में बैठे थे। उनको महाराजजी से वार्तालाप करना बहुत ही अच्छा लग रहा था। जब श्री महाराजजी का स्टेशन आ गया तो जज साहब ने पूछा - ''महाराज! इतनी भीड़ में आप उतरेंगे कैसे?''

महाराजजी ने फरमाया - ''जज साहब! आपकी आँखें किस दिन काम आयेंगी? **जो आँखों वाला किसी बिना आँख वाले के काम नहीं आवे उसकी आँखों का क्या उपयोग?''**

जज साहब इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने महाराजजी को गाड़ी से उतार कर रिक्शे तक पहुंचाने व उसमें बैठकर रवाना करने में पूरा सहयोग दिया।

(46)

अपने प्रति न्याय, दूसरे के प्रति उदारता

एक जज साहब श्री महाराजजी से कहने लगे – ''महाराज! आप कभी हमारे घर पधारने की कृपा करेंगे?''

महाराज ने फरमाया – ''अवश्य आयेंगे।'' संयोग कि बात कि महाराजजी एक मर्तबा जज साहब के शहर रात्रि के 12.00 बजे पहुँचे। पहरेदारों से पूछते-पूछते आपने उनका घर ढूँढ़ ही लिया। बाहरी गेट का सांकल खोलकर मकान के बाहरी बरामदे में दीवार के साथ रेक लगाकर बैठ गए।

प्रात: चार बजे जज साहब की जाग खुली। उन्होंने जैसे ही अपने कमरे का दरवाजा खोला, दंग रह गये यह देखकर कि महाराजश्री बरामदे में बैठे हैं। प्रणाम करने के पश्चात् पूछा – 'महाराज! कब पधारे?' महाराजजी ने उत्तर दिया कि वह रात 1.00 बजे के लगभग पहुँच गए थे। जज साहब दु:खी होकर बोले – 'महाराज अपने मुझे जगाया क्यों नहीं?' महाराज बोले – **'अरे! क्या कोई अपने बच्चों की नींद खराब करता है?'**

यह तो हुई एक घटना।

वही जज साहब किसी दिन वृन्दावन अर्द्धरात्रि को पहुँचे व रात किसी धर्मशाला में बिता ली। उन्होंने रात्रि के समय आश्रमवासियों को डिस्टर्ब करना उचित नहीं समझा। प्रात: वह आश्रम पहुँचकर महाराजजी से मिले। महाराजजी को जब यह जानकारी मिली कि रात्रि आपने धर्मशाला में गुजारी तो महाराज करुणित होकर बोले, **'जज साहब! हमारे साथ अपनेपन का क्या यही नमूना है? आप हमारा गेट खटखटाते और हमारी छाती पर चढ़कर बोलते कि मैं आया हूँ, मेरा प्रबन्ध करो। तब होती कोई बात।'**

अपने प्रति न्याय व दूसरों के प्रति उदारता का यह प्रैक्टिकल उदाहरण!

(47)

आँख वालों का धर्म

एक बार की बात है महाराजजी को नाव से दरिया पार जाना था। पैसा साथ रखते नहीं थे और बिना दाम दिए कभी यात्रा नहीं की। जरुरत के समय भिक्षा मांगकर काम चला लेते। नाव का भाड़ा देने के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ी।

तो पास ही कुछ लड़कों की गपशप की आवाज सुनकर उनके पास पहुँच गए। कहा – 'बेटा! मुझे दो पैसे चाहिए। नाव का भाड़ा देकर दरिया पार जाना है।'

एक लड़के ने डाँटकर कहा – 'जा बाबा माफ कर।'

श्री महाराजजी ने अपने हाथ बढ़ाकर उसकी कलाई पकड़ ली और बोले, 'भैया! ऐसे माफ नहीं करूँगा। मुझे यह बता दो कि — 'मैं लेने के काबिल नहीं या तुम देने में समर्थ नहीं। **अंधा हूँ भाई! क्या आँख वालों का यह धर्म नहीं बनता कि बे-आँख वाले के काम आ जाय?'**

श्री महाराजजी की निरुत्तर कर देनेवाली अपनेपन से सनी वाणी सुनकर लड़के उन्हें नाव पर बैठा आए और भाड़ा चुका दिया।

(48)

धर्म का काम

श्री महाराजजी बटाला पधारे हुए थे। किसी समाज सेवी संस्था में उनका सत्संग कार्यक्रम था। रिक्शेवाला सत्संग संबंधी सामान लेकर आया और मजदूरी माँगी। मैनेजर महोदय ने कहा कि भाई पैसे कम लो, यह धर्म का काम है। महाराजजी ने उनकी यह वार्ता सुनी तो बोले बिना नहीं रह सके। बोले – 'महाशयजी! क्या मजदूर को पूरी मजूरी न देना धर्म का काम है?'

जिस काम में किसी के भी अधिकार का हनन हो वह धर्म का काम हो ही नहीं सकता।

(49)

मानव के पतन का कारण

देहली में एक बार एक विराट सम्मेलन में गणमान्य व्यक्ति एकत्रित हुए थे। श्री महाराजजी भी उसमें शिरकत कर रहे थे। आपने सम्मेलन को सम्बोधन करते हुए कहा – 'किसी को कोई शंका हो तो पूछ सकते हैं।'

एक भाई – ''महाराजजी! इसका क्या कारण है कि आज का मंत्री भ्रष्ट हो गया है?''

श्री महाराजजी – ''देखो भाई! परदोष दर्शन के स्थान पर अपने दोष देखना चाहिए। बेईमान समाज का मंत्री ईमानदार कैसे हो सकता है? जैसे रानी के पेट से राजा निकलता है वैसे ही जनता के पेट से मिनिस्टर निकलता है। जैसे आप वैसे ही आपके मंत्री।''

दोष देखने की दृष्टि हमें विधान से मिली है। हम वह दृष्टि अपने पर न लगाकर दूसरों पर लगाते हैं, यही है मानव के पतन का कारण।

(50)

मन बदलने की टैक्नीक

गीता भवन के प्रांगण में श्री महाराजजी का सत्संग प्रवचन रखा गया था। एक महन्तजी महाराज आए और प्रणाम करके नीचे बैठने लगे। महाराजजी ने उनका हाथ पकड़कर अपने पास तख्त पर बैठा लिया।

''महाराज! मेरा एक प्रश्न है'' – महंतजी बोले।

महाराज धीरे से बोले – ''महंतजी! आपका क्या प्रश्न होगा? आप हमसे अकेले में बात कर लेना।''

महन्तजी – ''नहीं महाराज! मैं तो सबके सामने पूछूँगा।''

श्री महाराजजी – ''पूछिए फिर।''

महंतजी – ''महाराजजी! मन को एकाग्र करने की कोई टैक्नीक बताएँ।''

महाराजश्री – **''संबंध एक से रखो और सेवा अनेक की करो। मन किसी टैक्नीक से एकाग्र नहीं होता। अपने को बदलने से मन बदलता है।''**

(51)

दु:ख मिटाने का उपाय

इसी बैठक में एक-दूसरे भाई ने प्रश्न किया – 'महाराजजी! मेरी माताजी व मेरी पत्नी के आपस में नहीं बनती। मैं बड़ा दु:खी हूँ। मुझे क्या करना चाहिए।?'

श्री महाराजजी – 'भैया! अपनी माँ को आदर दो और बीबी से प्यार करो। बीबी से कहो कि — देखो! मेरी माँ तुम्हारी तो कुछ नहीं लगती पर वह तुम्हारे पति की माता है अत: उस नाते ही उनका सम्मान करो। माता से कहो कि — माँ! मेरी पत्नी तुम्हारी तो कुछ नहीं लगती पर वह तुम्हारे बेटे की पत्नी तो है न। इस नाते ही उसे प्यार दो।'

उन दोनों का दु:ख मिटे ना मिटे, तुम्हारा दु:ख अवश्य दूर हो जाएगा।

♦♦

प्राकृत भारती अकादमी

(प्रकाशन सूची)

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/ सं०/ अनु०	मूल्य
१.	सचित्र कल्पसूत्र (तृतीय संस्करण २००६)	सं० म० विनयसागर	८००.००
२.	राजस्थान का जैन साहित्य	सं० म० विनयसागर	५०.००
३.	प्राकृत स्वयं शिक्षक	डॉ० प्रेमसुमन जैन	१२०.००
४.	आगम तीर्थ	डॉ० हरिराम आचार्य	१०.००
५.	स्मरण कला	अ० मुनि मोहनलाल	१५.००
६.	जैनागम दिग्दर्शन	डॉ० मुनि नगराज	२०.००*
७.	जैन कहानियां	उ० महेन्द्र मुनि	४.००
८.	जाति स्मरण ज्ञान	उ० महेन्द्र मुनि	३.००*
9.	Half a Tale (Ardha Kathanak)	Dr. Mukund Lath	150.00
१०.	गणधरवाद	प० दलसुखभाई मालवणिया	५०.००*
11.	Jain Inscriptions of Rajasthan	Ram Vallabh Somani	70.00*
12.	Basic Mathematics	Prof. L. C. Jain	15.00*
१३.	प्राकृत काव्य मंजरी	डॉ० प्रेमसुमन जैन	१६.००*
१४.	महावीर का जीवन संदेश	काका कालेलकर	२०.००*
15.	Jaina Political Thought	G. C. Pande	40.00*
16.	Study of Jainism	Dr. T. G. Kalghatgi	100.00*
१७.	जैन, बौद्ध और गीता का साधना मार्ग	डॉ० सागरमल जैन	२०.००
१८.	जैन, बौद्ध और गीता का समाज दर्शन	डॉ० सागरमल जैन	१६.००
१९-२०.	जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलात्मक	अनु० डॉ० सागरमल जैन	७०.००
२१.	जैन कर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० सागरमल जैन	१४.००
२२.	हेम प्राकृत व्याकरण शिक्षक	डॉ० उदयचन्द जैन	१६.००*
२३.	आचारांग चयनिका (चतुर्थ संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	३०.००
२४.	वाक्पतिराज की लोकानुभूति	डॉ० के० सी० सोगाणी	१२.००*
२५.	प्राकृत गद्य-सोपान	स० प्रेमसुमन जैन	८५.००
२६.	अपभ्रंश और हिन्दी	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	३०.००
२७.	नीलांजना	गणेश ललवानी	१२.००
२८.	चन्दन मूर्ति	गणेश ललवानी	२०.००
29.	Astronomy And Cosmology	Prof. L. C. Jain	15.00*
30.	Not Far From The River	David Ray	50.00*
३१-३२.	उपमिति-भव-प्रंपच कथा	सं० म० विनयसागर	३००.००

नोट -- * चिह्नित पुस्तकों पर २० % अतिरिक्त विशेष छूट।

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सं०/अनु०	मूल्य
३३.	समणसुत्तं चयनिका (पंचम संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	३०.००
३४.	मिले मन भीतर भगवान	विजयकलापूर्णसूरि	३०.००
३५.	जैन धर्म और दर्शन	गणेश ललवानी	९०.००
36.	Jainism	Dalsukh D. Malvania	30.00
३७.	दशवैकालिक चयनिका (द्वितीय संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	२५.००
38.	Rasaratna Samucchaya	Dr. J. C. Sikdar	15.00*
३९.	नीतिवाक्यामृतम् (हिन्दी-अंग्रेजी)	डॉ० एस० के० गुप्ता	१००.००
४०.	सामायिक धर्म: एक पूर्ण योग	विजयकलापूर्णसूरि	१०.००
४१.	गौतमरास: परिशीलन	म० विनयसागर	१५.००
४२.	अष्टपाहुड चयनिका (पंचम संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	२०.००
43.	Ahimsa : The Science of Peace	Surendra Bothara	125.00
४४.	वज्जालग्ग का जीवन मूल्य (द्वितीय संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	२०.००
४५.	गीता चयनिका (तृतीय संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	८५.००
४६.	ऋषिभाषित सूत्र प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी	सं० म० विनयसागर	१००.००
४७-४८	नाड़ीविज्ञान एवं नाड़ीप्रकाश (संस्कृत-अंग्रेजी)	डॉ० जे० सी० सिकदर	३०.००
४९.	ऋषिभाषित : एक अध्ययन	डॉ० सागरमल जैन	३०.००
५०.	उववाइय सुत्तं (प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	अ० गणेश ललवानी	१००.००
५१.	उत्तराध्ययन चयनिका (चतुर्थ संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	२५.००
५२.	समयसार चयनिका	डॉ० के० सी० सोगाणी	१६.००
५३.	परमात्मप्रकाश व योगसार चयनिका	डॉ० के० सी० सोगाणी	१०.००
54.	Rishibhashit : A Study	Dr. Sagarmal Jain	30.00
५५.	अर्हत् वन्दना	म० चन्द्रप्रभसागर	३.००
५६.	राजस्थान में स्वामी विवेकानन्द भाग - १	पं० झाबरमल शर्मा	७५.००
५७.	आनन्दघन चौबीसी	भंवरलाल नाहटा	३०.००
५८.	देवचन्द्र चौबीसी सानुवाद	अ० प्र० सज्जनश्रीजी	६०.००
५९.	सर्वज्ञ कथित परम सामायिक धर्म	विजयकलापूर्णसूरि	४०.००
६०.	दु:ख मुक्ति : सुख -प्राप्ति	कन्हैयालाल लोढ़ा	३०.००
६१.	गाथा सप्तशती (प्राकृत, हिन्दी)	अ० डॉ० हरिराम आचार्य	१००.००
६२.	त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र भाग-१ (हिन्दी अ०)	अ० गणेश ललवानी	१००.००
६३.	द योगशास्त्र ऑफ हेमचन्द्राचार्य (संस्कृत, अंग्रेजी)	सं० सुरेन्द्र बोथरा	१००.००
६४.	जिनभक्ति (संस्कृत, हिन्दी)	अ० भद्रंकरविजय गणि	३०.००
६५.	सहजानन्दघन चरियं	भंवरलाल नाहटा	२०.००
६६.	आगम युग का जैन दर्शन	पं० दलसुख मालवणिया	१००.००
६७.	खरतरगच्छ दीक्षा नन्दी सूची	भंवरलाल नाहटा, म० विनयसागर	५०.००
६८.	आयार सुत्तं	अ० म० चन्द्रप्रभसागर	४०.००

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सं०/अनु०	मूल्य
६९.	सूयगड सुत्तं	अ० म० ललितप्रभसागर	३०.००
७०.	प्राकृत धम्मपद (प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	सं० डॉ० भागचन्द जैन	१५०.००
७१.	नालडियार तमिल (अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी)	सं० म० विनयसागर	१२०.००
७२.	नन्दीश्वर द्वीप पूजा	सं० म० विनयसागर	१५.००
७३.	पुनर्जन्म का सिद्धान्त	डॉ० एस० आर० व्यास	५०.००
७४.	समवाय सुत्तं (प्राकृत, हिन्दी)	अ० म० चन्द्रप्रभसागर	१००.००
७५.	जैन पारिभाषिक शब्दकोष	म० चन्द्रप्रभसागर	१०.००
७६.	जैन साहित्य में श्री कृष्ण चरित	म० राजेन्द्र मुनि शास्त्री	१००.००
७७.	त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र भाग-२ (हिन्दी अ०)	अ० गणेश ललवानी	६०.००
७८.	राजस्थान में स्वामी विवेकानन्द भाग-२	पं० झाबरमल शर्मा	१००.००
७९.	त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र भाग-३ (हिन्दी अ०)	अ० गणेश ललवानी	१००.००
८०.	दादा दत्त गुरु कॉमिक्स	म० ललितप्रभसागर	५.००
८१.	भक्तामर स्तोत्र: एक दिव्य दृष्टि	डॉ० साध्वी दिव्यप्रभा	५१.००
८२.	दादागुरु भजनावली	सं० म० विनयसागर	१५०.००
८३.	सचित्र जिनदर्शन चौबीसी (तृतीय संस्करण)	सं० म० विनयसागर	१००.००
७४.	त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र भाग-४ (हिन्दी अ०)	अ० गणेश ललवानी	८०.००
८५.	समणसुत्तं भाग-१ (प्राकृत, अंग्रेजी)	डॉ० के० सी० सोगाणी	७५.००
86.	Jainism In Andhra	Dr. G Jawaharlal	450.00
८७.	रहनेमि अध्ययन (प्राकृत, अंग्रेजी, हिन्दी)	सं० डॉ० बी० के० खड़बड़ी	२०.००
८८.	प्रवचन सारोद्धार भाग-१	अ० साध्वी हेमप्रभाश्रीजी	२५०.००
८९.	उपमिति भव प्रपंचा कथा भाग-१ (संस्कृत)	सं० विमलबोधिविजय	२००.००
९०.	मध्यप्रदेश में जैन धर्म का विकास	डॉ० मधुलिका वाजपेयी	१३०.००
९१.	महोपाध्याय देवचन्द्र: जीवन, साहित्य और विचार	म० ललितप्रभसागर	१००.००
९२.	बरसात की एक रात	गणेश ललवानी	४५.००
९३.	अरिहन्त	डॉ० साध्वी दिव्यप्रभा	१००.००
९४.	योग प्रयोग अयोग	डॉ० साध्वी मुक्तिप्रभा	१००.००
९५.	प्रबन्ध कोश का ऐतिहासिक विवेचन	डॉ० प्रवेश भारद्वाज	१००.००
९६.	पंचदशी एकांकी संग्रह	गणेश ललवानी	१००.००
97.	Jainism In India	Ganesh Lalwani	100.00
९८.	ज्ञानसार सानुवाद (प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	अ० गणि मणिप्रभसागर, रीता कुहाड	८०.००
९९.	विज्ञान के आलोक में जीव-अजीव तत्त्व	कन्हैयालाल लोढ़ा	४०.००
१००.	ज्योति कलश छलके	म० ललितप्रभसागर	४०.००
१०१.	जैन कथा साहित्य विविध रूप में	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	१००.००
102.	Neelakesi	Prof. A Chakravarti	100.00
१०३.	तिरूक्कुरल (तमिल, हिन्दी, अंग्रेजी)	अ०प्रो०ए०चक्रवर्ती आदि	२५०.००

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/ सं०/ अनु०	मूल्य
१०४.	त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र भाग-५ (हिन्दी अ०)	अ० गणेश ललवानी	१२०.००
105.	JAINA ACARA : Siddhanta Aur Svarupa (The Jaina Conduct)	Acharya Devendra Muni	300.00
१०७.	द्रव्य विज्ञान	डॉ० साध्वी विद्युतप्रभा	८०.००
१०८.	अस्तित्व का मूल्यांकन	डॉ० साध्वी मुक्तिप्रभा	१००.००
१०९.	दिव्यद्रष्टा महावीर	डॉ० साध्वी दिव्यप्रभा	५१.००
११०.	जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय	डॉ० सागरमल जैन	१००.००
१११.	वैराग्य शतक सानुवाद (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	ललिता सिंह	२०.००
११२.	तीर्थ श्री स्वर्णगिरि: जालोर	भंवरलाल नाहटा	६०.००
113.	Philosophy And Spirituality of Srimad Rajchandra	U. K. Pungalia	180.00
११४.	कल्याण मन्दिर (यंत्र-मंत्र सहित)	डॉ० साध्वी मुक्तिप्रभा	१००.००
११५.	भक्तामर स्तोत्र (सचित्र) (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)	अ० श्रीचन्द सुराणा 'सरस', सुरेन्द्र बोथरा	३२५.००
116.	Studies in Jainology	Dr. B. K. Khadabadi	300.00
११७.	पार्श्व कल्याण कल्पतरु	श्रीचन्द सुराणा 'सरस'	३०.००
118.	Best Jain Stories	Surendra Bothara	110.00
११९.	युगप्रधान जिनदत्तसूरि	ले० भंवरलाल नाहटा, सं० म० विनयसागर	३०.००
१२०.	अमरुशतक	डॉ० रामप्रसाद दाधीच	१००.००
१२१.	आ० हेमचन्द्र: काव्यानुशासनञ्च समीक्षात्मकमनुशीलनम् (संस्कृत)	छगनलाल शास्त्री	१६०.००
१२२.	देवता मूर्ति प्रकरणम् (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	अ० डॉ० रीमा हूजा, म० विनयसागर	३००.००
१२३.	पाप पुण्य तत्त्व	कन्हैयालाल लोढ़ा	१४०.००
124.	World Renowned Jain Pilgrimages	Mahopadhyaya Lalitprabh Sagar	400.00
१२५.	महोपाध्याय विनयसागर: जीवन, साहित्य और विचार	डॉ० नागेन्द्र	२००.००
१२६.	प्रवचन सारोद्धार भाग-२	अ० साध्वी हेमप्रभाश्रीजी	२५०.००
१२७.	चेतना के आयाम और मूल्यात्मक अनुभूति	डॉ० के० सी० सोगाणी	४५.००
१२८.	संस्कृति के झरोखे से	बशीर अहमद मयूख	५०.००
१२९-३०.	खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली, खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह	म० विनयसागर	१५०.००
१३१.	हमारे तीर्थंकर	दिनेश मुनि	७०.००
१३२.	विधि मार्ग प्रपा	सं० म० विनयसागर	१२५.००

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/ सं०/ अनु०	मूल्य
133.	The Concept of Divinity in Jainism	Dr. P. Ajay Kothari	250.00
१३४.	श्रावक धर्म विधि प्रकरण	म०विनयसागर,सुरेन्द्र बोथरा	१००.००
१३५.	अष्टक प्रकरण (प्राकृत, हिन्दी)	अनु० डॉ० अशोक कुमार सिंह	२००.००
१३६.	पुराणों में जैन धर्म	साध्वी डॉ० चरणप्रभा	२५०.००
१३७.	आचाराङ्ग - शीलाङ्कवृत्ति: एक अध्ययन	साध्वी डॉ० राजश्री	२००.००
१३८.	तपागच्छ का इतिहास	डॉ० शिवप्रसाद	५००.००
१३९.	भारतीय धर्मों में मुक्ति विचार	आचार्य डॉ० शिवमुनि	२००.००
१४०.	महाप्रभु महावीर	सुरेन्द्र मुनि	१००.००
१४१.	अचलगच्छ का इतिहास	डॉ० शिवप्रसाद	३००.००
१४२.	अध्यात्म गीता	आ० विजयकलापूर्णसूरि	२०.००
१४३.	जैन कुमार सम्भव महाकाव्य सानुवाद	डॉ० आर० सी० जैन	२००.००
144.	Jainism and	Vindo Kapasi	25.00
१४५.	आस्रव-संवर तत्त्व	कन्हैयालाल लोढा	१००.००
१४६.	निर्जरा तत्त्व	कन्हैयालाल लोढा	५०.००
147.	Jaina Mysticism And Other Eassays	Dr. Kamal Chand Sogani	150.00
१४८.	श्रीपाल चरित (प्राकृत, हिन्दी)	म० विनयसागर	२००.००
149.	The Basic Thought Of Bhagavan Mahavir	Dr. Jaykumar jalaj	15.00
१५०.	सरमद की रुबाइयाँ (फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी)	मुश्ताक अहमद राकेश	१२०.००
१५१.	प्रतिष्ठा लेख संग्रह भाग - २	म० विनयसागर	१५०.००
१५२.	श्रीमद् देवचन्द्र: समग्र अनुशीलन	साध्वी डॉ० आरतीबाई	१७०.००
१५३.	जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण और सूरसागर में श्रीकृष्ण	डॉ० उदाराम वैष्णव	२५०.००
१५४.	सुबोध शतक - १	न्यायाधिपति जसराज चौपड़ा	१००.००
१५५.	नलचम्पू और टीकाकार महो० गुणविनय: एक अध्ययन	म० विनयसागर	१००.००
१५६.	सुबोध शतक भाग - २	न्यायाधिपति जसराज चौपड़ा	६०.००
१५७.	जनसेवा: प्रभु सेवा	महेश नारायण भारद्वाज	१०.००
१५८.	अर्हत्	बशीर अहमद 'मयूख'	१००.००
१५९.	हिमालय की पद यात्रा	अनु० म० विनयसागर	३०.००
१६०.	ज्योति पथ	बशीर अहमद 'मयूख'	८०.००
१६१.	खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास (प्रथम)	म० विनयसागर	६००.००
१६२.	भगवान् महावीर का बुनियादी फ़िक्र (उर्दू)	अ० मुश्ताक अहमद राकेश	२५.००
१६३.	श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ	म० विनयसागर	
१६४.	भ० म० का बुनियादी चिन्तन (गुजराती)	डॉ० जयकुमार जलज	२०.००
१६५.	शत्रुंजय वैभव	मुनि कान्ति सागर	१२५.००

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/ सं०/ अनु०	मूल्य
१६६.	भ० म० का बुनियादी चिन्तन (मराठी)	डॉ० जयकुमार जलज	२०.००
167.	Ahimsa – The Ultimate Winner	Dr. N.P. Jain	250.00
१६८.	प्राकृत साहित्य की रूपरेखा	डॉ. तारा डागा	७५.००
१६९.	करुणा का झरना, वर्तमान युग में जैन दर्शन	डॉ० नरेन्द्र जैन	२५०.००
१७०.	सकारात्मक अहिंसा शास्त्रीय और चारित्रिक आधार	कन्हैयालाल लोढ़ा	२००.००
१७१.	जिन वल्लभसूरि ग्रन्थावली	म० विनयसागर	२६०.००
१७२.	कर्म सिद्धान्त	कन्हैयालाल लोढ़ा	१५.००
१७३.	देह और मन से परे	रणजीत सिंह कुमट	८०.००
१७४.	गाँधी	डी०सी० शर्मा	८०.००
174.	Gandhi	D.C. Sharma	70.00
१७६.	सुबोध शतक भाग - ३	न्यायाधिपति जसराज चौपड़ा	१२५.००
१७७.	मेरे राम : और राम का काम (तृतीय संस्करण ०६)	महेश नारायण भारद्वाज	१००.००
१७८.	लाओत्ज़े कृत ताओ ते छिङ	संजीव मिश्र	१५०.००
१७९.	दुःख रहित सुख	कन्हैयालाल लोढ़ा	१००.००
१८०.	जैन विभूतियाँ	माँगीलाल भूतोड़िया	५००.००
१८१.	धर्म-शिक्षा प्रकरण	म० विनयसागर	१००.००
१८२.	प्रतिष्ठा लेख संग्रह	म० विनयसागर	६००.००
१८३.	अख़लाक़-ए-मुहसिनी (फ़ारसी)	मुश्ताक़ अहमद राकेश	५००.००
१८४.	शुभशीलशतक	स० - म० विनयसागर	१५०.००
१८५.	तिर रही वन की गंध	डा० मुकुन्द लाठ	२५०.००
१८६.	सकारात्मक अहिंसा (संक्षिप्त संस्करण)	कन्हैयालाल लोढ़ा	१०.००
१८७.	सुबोध शतक - ४	न्यायाधीपति जसराज चौपड़ा	१२५.००
१८८.	Jainism: The Creed for All Times	Shir Dalpat Sing Baya	५००.००
१८९.	भगवान् महावीरर मूलभूत चिन्तन (कन्नड़)	ले. डॉ. जयकुमार जलज, अनु. श्रीमती इन्द्रा हेगड़े	२५.००
१९०.	कैंसर : एक सतत् संघर्ष	स० - सुधीन्द्र गेमावत	५०.००
१९१.	वीरस्तुतिः वीरत्थुई	अनु० - डॉ० तारा डागा	४०.००
१९२.	Nutrituion & Supplements in Major Mental Illnesses	डॉ. रतनसिंह	११०.००
१९३.	Animal Stories	Christine Townend	१००.००
१९५.	ब्रह्मदत्त शर्मा	शान्ति स्वरूप शर्मा	४०.००
१९६.	सिद्धराज ढड्ढा (विचार एवं जीवन यात्रा)	डॉ. अवध प्रसाद	५०.००
१९७.	भगवन् करुणो सिन्धो.....	सुरेन्द्र बोथरा	५५.००
१९८.	Environmental Ethics	S.M. Jain	१३०.००
१९९.	तरुतले	शांतिस्वरूप गुप्ता	४०.००

२०१.	खरतरगच्छ साहित्य कोश	म. विनयसागर	६००.००
२०२.	ध्यान शतक	कन्हैयालाल लोढ़ा	८५.००
२०३.	इन्द्रधनुष	सुधीन्द्र गेमावत	१७५.००
२०४.	तत्त्वार्थ सूत्र	सी.एल. जैन	२५०.००
२०५.	वीतराग ध्यान	कन्हैयालाल लोढ़ा	८५.००
२०६.	जैन धर्म में ध्यान	कन्हैयालाल लोढ़ा	१२०.०
२०७.	संगीतौषध	प्रभुशरण महता	१७०.००
२०९.	बापू के प्रेरक प्रसंग	डॉ. धर्मेन्द्रकुमार कांकरिया	८०.००
२१०.	Confusious	Sanjeev Mishra	300.00
२११.	सचित्र उपासक दशांग सूत्र	अमर मुनि	६००.००
२१२.	देवसिअ-राइअ प्रतिक्रमण सूत्र	आ० मणिप्रभ सागरजी महाराज	१६०.००
213.	Introducation To Jainism	Rudi Jansma, Sneh Rani Jain	400.00
२१४.	कायोत्सर्ग	कन्हैयालाल लोढ़ा	८५.००
२१५.	ध्यान से स्वबोध	रणजीत सिंह कूमट	९०.००
218.	Experiments in Moral Sovereignty	Jeff Cannabal	325.00
२१९.	नन्दीसूत्र	अमन मुनि	६००.००
220.	Historicity of 24 Jain Tirthankars	Mangilal Bhutoria	400.00
२२१.	सुबोध शतक - 5	न्यायाधिपति जसराज चौपड़ा	१६०.००
२२४.	सचित्र रायपसेणिय (राजप्रश्नीय) सूत्र	स. अमरमुनि	६००.००
225.	*SELF AWARENESS THROUGH MEDITATION*	R.S. Kumat	90.00
२२६.	सचित्र अनुयोगद्वार सूत्र (प्रथम भाग)	स. अमरमुनि,	६००.००
२२७.	सचित्र अनुयोगद्वार सूत्र (द्वितीय भाग)	स. अमरमुनि,	६००.००
२२८.	रुबाइयाते उमर खय्याम	अनु. मुश्ताक अहमद राकेश	५००.००
२२९.	Death with Equanimity	Dr. D.S. Daya	500.00
२३०.	तरुतले - 2	शांतिस्वरूप गुप्ता	५०.००
२३१.	जैन धर्म और विश्व-शांति	राजकुमार जैन	१४०.००
२३२.	व्योम स्पर्श	गजेन्द्र बोहरा	१००.००
२३३.	षट्द्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा	नारायण लाल कछारा	३००.००

♦ ♦

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग

13ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर, जयपुर

ISBN No. 978-81-89698-40-9